पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३०वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

॥ ओ३म् ॥

सीता-बनवास

लेखक—
बंगाल के प्रसिद्ध लेखक
पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

—:o:—

प्रकाशक—
म० राजपाल एन्ड सन्ज़
आर्य पुस्तकालय, अनारकली लाहौर।

तीसरा संस्करण] [मूल्य १।)

उपहार

श्री ....

....

की ओर से

श्री ....

....

को सप्रेम

विषय-सूची

सीता बनवास

पहला काण्ड

बनवास की इच्छा

श्री राजा रामचन्द्र जी महाराज सिंहासन पर बैठकर निष्कण्टक राज करने लगे। वह अपने पिता राजा दशरथ की भाँति प्रजापालक थे। उनके सुशासन के प्रताप से प्रजा बड़े सुख-चैन से रहती थी और सारा कोशल-देश धन-धान्य से भरपूर था। किसी को भी कोई कमी वा कष्ट न था। प्रतिदिन नियत समय अपने सुयोग्य मन्त्रिमण्डल के साथ बैठकर अन्यमनस्क भाव से अपनी प्रजा की दशा और राज्य-सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण किया करते। इससे जो समय बच रहता वह अपने भाइयों और जनकदुलारी सीताजी के साथ वार्त्तालाप में बिताते।

कुछ समय इसी प्रकार वीत गया। सीतीजी ने गर्भ धारण किया। गर्भ के लक्षण दिखाई दिये। श्रीरामचन्द्र जी और उनकी माता कौशल्या जी के आनन्द की कोई सीमा न रही। राज-भवन के रहने वाले आनन्द के मारे फूले नहीं समाये। अयोध्या के नर और नारी अपने नये राजकुमार का दर्शन लाभ करने की आशा से बड़े प्रसन्न हुए और अपने अपने घरों में नानाप्रकार के उत्सव मनाने लगे।

उपरोक्त घटना के कुछ दिन पीछे महर्षि ऋष्यशृङ्ग ने अपने आश्रम में एक महायज्ञ (सत्र) करना आरम्भ किया। उन्होंने श्री रामचन्द्र जी को परिवार सहित आकर उसमें सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण भेजा। उन दिनों जानकी के पुत्र उत्पन्न होने वाला था। इस कारण वह स्वयं और उनके अनुरोध से रामचन्द्र और लक्ष्मण भी ऋष्यशृङ्ग के आश्रम को न जा सके। केवल गुरुजन (घर के बड़े-बूढ़े लोग) अथवा कौशल्या आदि बूढ़ी रानियाँ वशिष्ठ और अरुन्धती के साथ अपने जामाता के आश्रम को गये। यद्यपि वह सब भी कठोरगर्भा सीता को ऐसे समय में घर पर अकेला छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। परन्तु जामाता का बुलावा टालना भी उचित नहीं था। इसलिये उन्हें जाना ही पड़ा।

पूर्वोक्त घटना से कुछ दिन पहले राजा जनक रामचन्द्र और सीता से मिलने के लिये अयोध्या आये हुए थे। कौशल्या आदि के यज्ञ में चले जाने पर वह भी मिथिलापुरी को लौट गये। इस कारण पहले तो सासुओं से बिछोह हुआ और फिर झटपट पिता से विप्रयोग होने से जानकी जी शोक से व्याकुल हो गयीं। कठोरगर्भा स्त्रियों को शोक सन्ताप से बड़ी हानि पहुँचने का भय होता है। इसलिये रामचन्द्र जी अन्य सब कामकाज छोड़ सीता जी के मनोविनोद के लिये उनके पास ही रहने लगे।

२

एक दिन श्रीरामचन्द्र जी सीता जी के पास बैठे हुए थे कि इतने में एक द्वारपाल ने आकर विनयपूर्वक निवेदन किया— "महाराज की जय हो! महर्षि ऋष्यशृङ्ग के आश्रम से कोई संदेश लेकर मुनि अष्टावक्र पधारे हैं।"

यह सुनकर रामचन्द्र जी और सीता जी बड़े विस्मित हुए

और द्वारपाल से बोले—"जाओ, उन्हें शीघ्र ही ले आओ। विलम्ब न करो।"

द्वारपाल मुनि को साथ ले आया। रामचन्द्र और सीताजी मुनि का यथोचित आदर-सत्कार करने के लिये उठ खड़े हुए और उन्हें प्रणाम करके बैठने के लिये आसन दिया। अष्टावक्र ने हाथ उठाकर "चिरञ्जीव" कहकर दोनों को आशीर्वाद दिया। मुनि के बैठ जाने पर रामचन्द्र जी उनसे पूछने लगे—"भगवान ऋष्यशृङ्ग सकुशल हैं? उनके यज्ञ का कार्य्य निर्विघ्नपूर्ण हो रहा है?"

सीता जी भी पूछने लगीं—"क्यों जी! मेरे गुरुजन और आर्य्या शान्ता सब सकुशल तो हैं? वह कभी हमें भी स्मरण करते हैं या नहीं?"

इस प्रकार पूछे जाने पर अष्टावक्र ने सबकी कुशल-क्षेम की बात सुनाकर जानकी जी को सम्बोधन करके कहा—"देवी! कुलगुरु भगवान वशिष्ठ ने आपको यह कहा है—भगवती विश्व-म्भरा ने तुम को जन्म दिया है। प्रजापति के समान राजा जनक तुम्हारे पिता हैं। हे नन्दिनि! तुम उन राजाओं की वधू हो जिनके कुल में स्वयं सूर्य्य हुए हैं और जिनके गुरु हम हैं। ऐसी दशा में हम तुम से और क्या आशा रक्खें। हम दिन-रात यही चाहते हैं कि तुम वीर पुत्र को जन्म दो।"

यह सुनकर सीता जी ने लज्जा से आँखें नीचे को कर लीं। रामचन्द्र जी बड़ी प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—"यदि गुरुदेव ऐसा आशीर्वाद देते हैं तो हमारी मनोकामना अवश्य ही पूर्ण होगी।"

अष्टावक्र बोले—"भगवती अरुन्धती, आर्य्या शान्ता और देवियों ने बार-बार आपको यह संदेश दिया है—"यदि सीता जी को किसी वस्तु की इच्छा हो, उनकी कोई साध (गर्भ-दोहद) हो

तो उसे तत्काल पूर्ण करना चाहिये ।"

रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया—"आप उन लोगों की सेवा में मेरी ओर से निवेदन कीजियेगा कि जैसा वह कहती हैं वैसा ही हो जाता है। उसमें विलम्ब नहीं होता।" अष्टावक्र सीता जी से कहने लगे—"जानकी ! ऋष्यश्रृङ्ग ने बड़े प्रेम और आदर से कहा है 'बेटी ! कठोरगर्भा होने के कारण मैं तुम्हें इस समय नहीं बुला सका और रामचन्द्र और लक्ष्मण को भी तुम्हारे दिल बह-लाने के लिये छोड़ा है। तुम मुझ से अप्रसन्न न होना। यज्ञ के समाप्त होते ही सब अयोध्या आयेंगे और तुम्हारी गोद पुत्र-रत्न से हरी-भरी देखेंगे।"

श्रीरामचन्द्र जी आनन्द से मुस्करा कर बोले—"भगवान वशिष्ठ का मेरे लिये क्या आदेश है?" अष्टावक्र ने उत्तर दिया—"महाराज ! सुनिये। वशिष्ठ-देव ने आपको कहा है—'पुत्र ! हम जामाता के कारण रुके हुए हैं। कुछ दिनों तक अभी हमें यहाँ ही ठहरना पड़ेगा। तुम अभी बालक हो। राजसिंहासन पर बैठे भी अभी देर नहीं हुई। देखना ! प्रजा को प्रसन्न रखने का यत्न करते रहना। उससे जो यश लाभ होता है वही तुम्हारा (रघुकुल के राजाओं का) परम धन है'।"

यह सुनकर श्रीरामचन्द्र जी कहने लगे—"गुरुजीने मुझे बड़ा अनुगृहीत किया। उनका आदेश मेरे सिर-आँखों पर। यह मुझे सर्वथा स्वीकार है। उनके चरण-कमलों में मेरा प्रणाम करके कहिये—प्रजा को प्रसन्न रखने के लिये मुझे स्नेह, दया, सुख, सौख्य छोड़ना पड़े, चाहे सीताजी को भी त्यागना पड़े, परन्तु मैं धर्म्म और न्याय पथ से नहीं डिगूँगा। उनके अनुरञ्जन और आराधन के लिये तन-मन से चेष्टा करूँगा। इस महत्कार्य्य

के लिये मुझे अपने सब कुछ, अपने सर्वस्व सीताजी को छोड़ते हुए भी तनिक व्यथा न होगी । आप इस विषयमें चिन्ता मत कीजिये । मुझे इसका सदैव ध्यान है।"

रामचन्द्रजी का उत्तर सुनकर सीताजी बड़ी प्रसन्न हुईं, और बोलीं—"यदि वास्तव में ऐसा न होता तो सारा संसार आपको 'रघुकुल-दीपक' कैसे समझता ?"

३

वार्त्तालाप समाप्त हो जाने पर श्रीरामचन्द्रजी ने एक अनुचर को बुलाकर अष्टावक्र को आदर-सत्कार से ठहराने की आज्ञा दी। मुनि आशीर्वाद देकर विश्राम करने चले गये। उनके चले जाने पर श्रीरामचन्द्र और सीता दोनों बातें कर रहे थे कि इतने में लक्ष्मणजी आ गये और बोले—"आर्य्य ! मेरी आज्ञा से चित्रकार ने आपका चरित (जीवन-चरित्र) इस फलक (काष्ठ-खण्ड) पर चित्रित किया है। देखिये।"

रामचन्द्रजी ने उत्तर दिया—"प्रिय ! देवी के शोकातुर और व्याकुल होने पर किस प्रकार उनका मनोविनोद करना चाहिये, यह तुम भलीभाँति जानते हो। अस्तु ! यह तो बताओ कि मेरा कब तक का चरित्र इस पर अङ्कित किया गया है ?"

लक्ष्मणजी बोले—"आर्य्या सीताकी अग्नि परीक्षा तक"

यह दारुण वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी का मुखरूपी कमल मुरझा गया। वह कहने लगे—"प्यारे भाई ! ऐसी बात तुम फिर हमारे सामने मत कहना। सीताजी की अग्निपरीक्षा की बात सुनने वा स्मरण होने से मुझे लज्जा आती है। कैसी अनुचित बात है ! जिसके जन्म लेने से ही सारा संसार पवित्र हो गया उसीकी पवित्रता, उसीके शुद्ध आचरण की परीक्षा इस प्रकार करायी

गयी। हाय! शोक! संसार को खुश करना कैसा कठिन है!"

रामचन्द्रजी को शोक के वेगमें प्रवेश करते देख सीताजी बोलीं—"नाथ! इन बातों को स्मरण करके आप क्यों वृथा दुःखी हो रहे हैं? आपने अब तक जो कार्य्य किया है, सर्वथा उचित किया है। यदि आप ऐसा न करते तो रघुकुल की मान-मर्यादा पर और रघुकुल वालों के उज्ज्वल यश पर कलङ्क लग जाता और मेरे सिर से भी यह दारुण अपवाद दूर न होता।"

सीताजी की बात सुनकर रामचन्द्रजी बोले—"प्रिये! अब यह बातें छोड़ दो। आओ यह चित्र देखें।"

सब मिलकर चित्र देखने लगे। इधर-उधर देखकर सीताजी बोलीं—"नाथ! यह चित्रमें ऊपर की ओर क्या है?"

श्रीरामचन्द्रजी ने उत्तर दिया—"देवी! यह गूढ़ रहस्य से पूर्ण जृम्भक अस्त्र हैं। यह कभी न चूकने वाले, निशाने पर ठीक बैठने वाले, तीरों के ढेर हैं। ब्रह्मा आदि प्राचीन ऋषियों ने ब्रह्म के हित के लिये, वेद की रक्षा के लिये बड़े-बड़े दुष्कर तप करके इन अस्त्रों को प्राप्त किया था। रीति-परम्परा के अनुसार भगवान कृशाश्व से विश्वामित्र जी ने यह अस्त्र-विद्या सीखी और परम कृपालु श्री विश्वामित्रजी ने ताड़का-बध के समय यह सब विद्या हमें पढ़ायी थी। तब से यह गुप्त निधि हमारे पास ही है। जब तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा तो यह विद्या उसे सिखलायेंगे।"

लक्ष्मणजी ने कहा—"देवी! इधर देखिये। यह मिथिला का वृत्तान्त है।"

उधर देखकर सीताजी बहुत प्रसन्न होकर बोलीं—"हाँ, है तो सब ठीक। जैसे आर्य्य पुत्र (श्री रामचन्द्रजी) शिव के धनुष को उठा कर उस पर चिल्ला चढ़ाने की चेष्टा कर रहे थे और जिस

प्रकार विस्मय-भरी आँखों से मेरे पिता टकटकी बाँधे देख रहे थे वैसे ही, ठीक उसी दृश्य का यह चित्र बना हुआ है । आहा ! कैसा सुन्दर चित्र है ! कैसा अद्भुत कौशल दिखाया है ! यह स्वयम्वर सभा है। यह विवाह-मण्डप है । इस सभा में बैठे हुए समयोचित कपड़े पहने हुए आप चारों भाई कैसे सुन्दर दिखाई देते हैं । कैसा सुहावना समय है ! कैसा चित्ताकर्षक दृश्य है ! चित्र देखने से ऐसा मालूम होता है कि जैसे अब भी वही स्थान है और वही समय है.........।"

यह सुनकर और पुरानी बातों के स्मरण आ जाने से रामचन्द्रजी बोले—"प्रिये ! तुम ठीक कहती हो । जब राजर्षि जनक के कुलगुरु महर्षि शतानन्द ने तुम्हारा कमल-जैसा सुन्दर और नरम हाथ (जो वास्तव में मूर्त्तिमान महोत्सव था) मुझे सौंपा था ठीक वही दृश्य यहाँ दिखलाया गया है ।"

चित्र पर एक ओर उँगली रखकर लक्ष्मणजी बोले—"यह आर्य्या (सीताजी) हैं। यह श्रीमती माण्डवी हैं और वह वधू श्रुतिकीर्ति हैं ।"

लज्जा के कारण लक्ष्मण ने अपनी धर्म्मपत्नी उर्मिला की ओर इशारा न किया। सीताजी समझ गयीं और लक्ष्मण के साथ हँसी करने के लिये उर्मिला की ओर उँगली उठा कर मुस्करा कर पूछने लगीं—"वत्स ! यह क्या है ? यह किसका चित्र है ?"

लक्ष्मणजी लज्जा के साथ मुस्कराये और सीताजी की बात टालकर कहने लगे—"देवी ! देखिये, इधर शिवके धनुष का समाचार पाकर क्षत्रिय-कुलके नाश करने वाले भगवान परशुराम जी क्रोध के वेगसे लाल हुए हमारे अयोध्या के रास्ते को रोके किस प्रकार डटे खड़े हैं और उधर सारे संसार को जीतने वाले

आर्य्य उनके गर्व को तोड़ने, उसको पददलित करने के लिये, तीर चढ़ाये कैसे तने खड़े हैं।

अपनी प्रशंसा सुन कर रामचंद्र जी ने लज्जा से सिर झुका लिया और बोले—"लक्ष्मण ! इस चित्र में बहुत सी अन्य बातें भी देखने योग्य हैं। तुम उन सब को छोड़ कर यही दृश्य क्यों दिखला रहे ?"

सीता जी श्रीरामचंद्र जी की बात सुन कर प्रसन्न होकर बोलीं—"नाथ ! इस विनय-माहात्म्य से आप की बहुत शोभा है। यदि आप वास्तव में ऐसे न होते तो संसार आप की इस प्रकार मुक्त कंठ से प्रशंसा क्यों करता ? संसार में सूर्य्य की भाँति आप का यश चारों ओर कैसे फैलता ?

इसके बाद अयोध्या में प्रवेश करने का दृश्य सामने आया। उसे देखते ही रामचंद्र जी की आँखें डबडबा आयीं। वह गद्गद् कंठ से कहने लगे—"विवाह के बाद हमारे दिन कैसे आनंद में कटते थे। पिता जी को कितना आनंद हुआ था। नयी बहुओं को पाकर माताओं के हर्ष की सीमा नहीं रही थी। वह फूली नहीं समाती थीं। उन से सदैव प्यार करती थीं और उन का एक क्षण के लिये आँख से ओझल हो जाना असह्य हो उठता था। राज-भवन में चारों ओर आनंद की निरंतर वर्षा होती थी। प्रेम, अगाध प्रेम का कभी न थमने वाला झरना झरता रहता था। नित नये उत्सव होते रहते थे।"

फिर लक्ष्मण जी बोले—"यह मथुरा है।"

राजा रामचंद्र मथुरा का नाम सुनते ही उदास हो गये और उधर ध्यान न दे, दूसरी ओर दृष्टिपात कर बोले—"प्रिये ! देखो, देखो ! शृङ्गवेरपुर में यही वह इंगुदी का वृक्ष है जिस के

नीचे प्रिय मित्र निषादराज से भेंट हुई थी। यह दृश्य कैसा सुंदर दिखलाया गया है।"

सीता जी देख कर बड़ी प्रसन्न हुईं और बोलीं—"नाथ ! यहाँ जटा-संयमन (बाँधने) और कपड़े पहनने का दृश्य देखिये।"

लक्ष्मण जी कहने लगे—"इक्ष्वाकु-वंश में परम्परा से यही रीति चली आती है कि राजा वृद्धावस्था को प्राप्त हो कर राज्य का भार पुत्र को सौंप कर और घर-बार छोड़ कर तपस्या करने के लिये बन को चले जाया करते थे, परंतु आर्य्य (श्रीरामचंद्र जी) को बाल्यावस्था में ही कठोर आरण्यक व्रत धारण करना पड़ा।" फिर रामचंद्र जी को सम्बोधन कर के कहा—"आर्य्य, महर्षि भरद्वाज ने हमें चित्रकूट का मार्ग बताते समय जिस वट-वृक्ष की बात कही थी, यही वह वृक्ष है।"

इस पर सीता जी ने पूछा—"नाथ ! यहाँ जो घटना हुई थी वह भी स्मरण है ?"

रामचंद्र जी ने उत्तर दिया—"प्रिये ! उसे कैसे भूल सकते हैं ? मार्ग की थकान से चूर हो कर यहाँ तुम मेरी छाती पर सिर रख कर सोयी थीं।"

एक ओर इशारा कर के सीता जी बोलीं—"प्राणनाथ ! इधर तो देखिये। हमारे दक्षिण बन में घूमने का क्या सुंदर चित्र बनाया है ! मुझे स्मरण आता है कि जब मैं धूप से बहुत व्याकुल हो गयी थी तो इसी स्थान पर आप ने ताड़ का पत्ता अपने हाथ से मेरे सिर पर रख दिया था।"

श्रीरामचंद्र जी कहने लगे—"प्रिये ! यह पहाड़ी नदियों के किनारे का तपोवन है। इसी तपोवन के वृक्षों के नीचे गृहस्थ लोग वानप्रस्थ-आश्रम धारण कर के किस प्रकार आनंदपूर्वक

अपना धर्म्म-पालन कर रहे थे ?"

लक्ष्मण जी बोले—"आर्य्य ! यही वह जनस्थान वाला परिसर नामी पर्वत है। इस की ऊँची ऊँची चोटियों पर बादलों के सदैव उठने बैठने के कारण उसीका नीला-नीला रङ्ग दिखाई दे रहा है। घने वृक्षों की छाया के कारण यह स्थान कैसा सुंदर और रमणीक दिखाई देता है। इस के बीचों-बीच निर्मल जल से भरी हुई गोदावरी कैसे वेग से बहती चली जा रही है।"

श्रीरामचंद्र जी ने पूछा—"प्रिये ! तुम्हें स्मरण है कि यहाँ ही हम तुम मग्न हो कर कुटिया में बैठे थे और लक्ष्मण जी खाने के लिये कंद-मूल-फल ढूँढते इधर-उधर फिरते थे। इसी गोदा-वरी के तीर पर हम तुम सब टहला करते थे और टहलते समय हलकी, ठंडी और सुगंधित पवन कैसा आनंद देती थी। आहा ! उस दशा में भी कैसा सुख और आनंद से भरपूर जीवन बिताते थे !"

लक्ष्मण जी चित्र पर एक ओर उँगली रख कर बोले—"यह पञ्चवटी है और इधर यह शूर्पणखा है।"

जानकी जी की बेचारी जन्म से ही भोली-भाली थीं। शूर्पणखा और पञ्चवटी वाले दृश्य को देख कर उस पुरानी घटना के याद आ जाने से कुछ उदास हो कहने लगीं—"प्राणेश्वर ! अब देखना बंद कीजिये। इतना ही काफी होगा।"

रामचंद्र जी सीता जी के मन की बात ताड़ गये, और हँस कर बोले—"यह तो केवल एक चित्र है। असली पापिन शूर्प-णखा और पञ्चवटी नहीं है। तुम घबराती क्यों हो ?" लक्ष्मण जी इधर उधर देख कर बोले—"कैसे आश्चर्य की बात है कि इस चित्र पर दृष्टि डालने से ही जनस्थान की सब घटनाएँ आँखों के

सामने आ जाती हैं। पापी राक्षस रावण ने सोने का मृग बना कर छल से हम पर जो अत्याचार किया था, यद्यपि उस का उसे उचित और पर्याप्त दंड मिल चुका है, परन्तु तब भी उस बात की याद में ही हृदय काँप उठता है, दिल पर बड़ी चोट लगती है। उस भयानक दृश्य के सामने आ जाने से मन में अवर्णनीय भाव उत्पन्न हो जाता है। इस घटना के पश्चात् जब महाराज सीता जी को ढूँढ रहे थे और शोक-ताप के वेग से व्याकुल और बेसुध हो रहे थे, उस दशा को देख कर कौन सा पत्थर का दिल है जो पिघल कर मोम न हो जाता हो और कौन सा लोहे का दिल है जो बिजली की तरह तड़प न उठता हो ?"

लक्ष्मण जी की यह बात सुन कर सीता जी की आँखों में आँसू आ गये और वह अपने मन ही मन में कहने लगीं—"हाय ! शोक है ! मुझ जन्म-जली अभागी के लिये आर्य्य-पुत्र को कितना कष्ट भोगना पड़ा !"

रामचन्द्रजी भी शोक के वेगको रोक न सके। उनकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली। लक्ष्मणजी दोनों की दशा देख रहे थे। बोले—"महाराज! चित्र देखने से आप इतने अधीर क्यों हुए जाते हैं ?

रामचन्द्रजी ने उत्तर दिया—"प्यारे भाई ! उस समय मैं विरहकी अग्निसे जला जा रहा था। मेरे कलेजेमें असह्य हूक उठ रही थी। मुझे तनिक भी सुध न रही थी। उस दिल हिला देने वाली घटना से मैं अतीव अधीर हो उठा था। मेरी दशा ठीक ठिकाने नहीं रही थी। उस समय यदि मैं अपने शत्रुओं से यथोचित बदला लेने का बार-बार सङ्कल्प न करता, बार-बार शपथ न खाता, तो मैं कभी जीवित न रह सकता। आज इस

चित्रको देखकर मुझे फिर वही बीती बातें याद आ गयी हैं और मैं भी प्रायः वैसा ही अधीर और विह्वल हो उठा हूँ । लक्ष्मण! तुमने तो यह सब कुछ अपनी आँखों से देखा है, फिर तुम मुझ से एक अनभिज्ञ पुरुष की तरह क्यों पूछ रहे हो ?"

यह सुनकर लक्ष्मणजी बड़े उदास और लज्जित हुए। इस समय श्री रामचन्द्र जी के ध्यान को किसी दूसरी ओर आकर्षित करना उचित समझ कर सीता जी से कहने लगे—"आर्य्ये, इधर दण्डकारण्य का दृश्य देखिये। यहाँ कबन्ध नामी राक्षस रहता था। ऊपर ऋष्यमूक पर्वत पर महर्षि मतङ्ग का आश्रम था। यह देखिये वही श्रमणा नाम की सिद्ध शबरी और यह पम्पा सरोवर है।"

पम्पा का नाम सुनते ही श्री रामचन्द्र जी बोल उठे—"देवी! पम्पा बहुत ही सुन्दर, सुहावना और रमणीय सर था। इसी के किनारे किनारे मैं तुम्हें ढूँढ़ता फिरता था। उस समय मैंने देखा कि इस में बड़े सुन्दर-सुन्दर कमल खिल रहे थे। मन्द पवन के झोंकों से शनैः शनैः हिलते हुए कमल इस सरोवर की शोभा को दस गुना बढ़ा रहे थे। इन की सुगन्धि चारों ओर फैल कर पवन को सुगन्धित कर रही थी। भ्रमर पुष्पों के चारों ओर मँडला रहे थे। हँस, सारस और अनेक प्रकार के पक्षी मस्त होकर वहाँ कलोलें कर रहे थे। मेरी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी। इस कारण मैं उस समय भी इस सरोवर की शोभा को भली भाँति नहीं देख सका। जो कुछ थोड़ा-बहुत देखा उस अन्तर में देखा जब आँसू की एक बूँद टपक जाती थी और दूसरी बूँद उतरती थी (अथवा एक आँसू के टपकने और दूसरे के आने में जितना अवकाश मेरी आँखों को मिल सकता था)।"

चित्र पर एक ओर दृष्टिपात करके सीता जी लक्ष्मण जी से पूछे लगीं—"वत्स! जिस पर्वत पर फूले-फले कदम्ब की टहनियों पर मतवाले मस्त मोर-मोरनियाँ और अन्य पक्षी नाच रहे हैं, जहाँ दुबले-पतले आर्य्यपुत्र मूर्च्छा में बेसुध पड़े हैं और तुम स्वयं रोते-रोते उन्हें थामने की चेष्टा कर रहे हो, इसका क्या नाम है?"

लक्ष्मण जी ने उत्तर दिया—"इस पर्वत का नाम माल्यवान है। माल्यवान की वर्षाऋतु में कुछ और ही शोभा होती है। नये बादलों के उठने से इस की चोटियाँ कैसी सुन्दर और मनोहर मालूम हो रही हैं।"

आर्य्य पुत्र इस स्थान पर बहुत व्याकुल हुए थे। यह सुन कर और फिर वही पिछली दशा स्मरण करके श्री रामचन्द्र जी बड़े विकल हो उठे और कहने लगे—"प्यारे लक्ष्मण! बस करो, बस करो। तुम अब माल्यवान की बात न करो। इसे सुनकर मेरे हृदय में शोक-समुद्र उमड़ा जा रहा है। और सीता जी का वियोग भी ताज़ा होता जा रहा है। यह विरह-वेदना मुझ से सही नहीं जाती।"

इधर जानकी जी भी कुछ सुस्त सी हो गयीं। यह दशा देख कर लक्ष्मण जी ने कहा—"आर्य्य पुत्र! अब चित्र देखना बन्द कर देना चाहिये। श्रीमती सीता जी थक गयी हैं। अब उन्हें आराम करना चाहिये। मैं जाने की आज्ञा चाहता हूँ। आप भी आराम कीजिये।"

४

इतना कह कर और आज्ञा पाकर जब लक्ष्मण जी चलने को हुए तो सीता जी श्री रामचन्द्र जी से कहने लगीं—"चित्र

देखते-देखते मेरे मन में एक आकांक्षा, एक इच्छा, उत्पन्न हुई है। आप कृपाकर उसे पूरा कीजियेगा।"

रामचन्द्र जी बोले—"प्रिये ! बताओ, तुम्हारी इच्छा क्या है, शीघ्र पूरी की जायगी। सीता जी ने कहा—"प्राणनाथ ! मेरी इच्छा यही है कि मैं ऋषि-पत्नियों के साथ फिर कुछ दिन के लिये तपोवन में रहूँ और निर्मल जल से भरी हुई श्री भागीरथी के पवित्र, पतितपावन जल में रोज़ स्नान किया करूँ।"

सीता जी की बात सुन कर रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी से कहा—"प्यारे भाई ! हमारे गुरुदेव और अन्य गुरुजनों की यही आज्ञा है कि सीता जी की जो कोई इच्छा हुआ करे वह शीघ्र पूरी की जाया करे। इस कारण अब चलने की तैयारी करो। कल प्रातःकाल उन्हें उसी स्थान पर छोड़ आना चाहिये जहाँ वह जाना चाहती हैं।"

यह सुन कर सीता जी बहुत प्रसन्न हुईं और बोलीं—"प्राणेश्वर ! आप भी साथ चलेंगे ?" । रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया—"प्रिये ! तुम यह क्या कह रही हो ? क्या मैं तुम्हारी आँखों से ओझल होकर एक घड़ी भी आनन्द से बिता सकता हूँ ?"

सीता जी ने मुस्कराकर लक्ष्मण से कहा—"वत्स ! तुम्हें भी हमारे सङ्ग चलना होगा।" लक्ष्मण जी "जो आज्ञा" कहकर चल दिये और यात्रा की तैयारियाँ होने लगीं।

———

दूसरा काण्ड

सीता पर दोषारोपण

लक्ष्मण जी के चले जाने पर रामचन्द्र जी और सीता जी विश्राम-गृह में चले गये और दोनों निःसङ्कोच वार्तालाप में मग्न हो गये। कुछ देर में सीता जी को आलस्य ने आ घेरा।

यह देखकर रामचन्द्र जी बोले—"प्रिये! यदि तुमको नींद आती हो या थकावट होती हो तो मेरे गले में अपनी भुजाएँ डालकर थोड़ी देर विश्राम कर लो।" सीताजी ने वैसा ही किया।

श्री रामचन्द्र जी बोले—"प्रिये! तुम्हारी भुजाओं के स्पर्श से मेरे शरीर में मानों अमृत का सञ्चार हो रहा है। मेरी सभी इन्द्रियाँ अभूतपूर्व रसास्वादन करके अवश हुई जा रही हैं। चेतनता मुझे छोड़े भागी जा रही है! नहीं जानता, मुझे एकदम निद्रा ने घेर लिया है वा मोह ने। कुछ समझ नहीं सकता।"

रामचन्द्र जी के मुख से निकले हुए अमृतमय शब्दों को सुनकर जानकी जी हंसी और कहने लगीं—"प्राणनाथ! आप जिस पर अनुकूल होते हैं, उसपर चिरकाल तक कृपालु ही बने रहते हैं। आपकी दया की वर्षा में तनिक भी परिवर्त्तन नहीं होता। आपकी कृपालुता और प्रसन्नता चिरकाल तक वैसी ही बनी रहती है। जहाँ तक मैंने सुना है, स्त्रियों के लिये इससे अधिक सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है? मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि चिरकाल तक ऐसा ही प्रेम, स्नेह और अनुग्रह बनाये रखिये।"

सीता जी के मधुर मनोहर वचन सुनकर रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया—"प्रिये, तुम्हारी बातें सुनकर मेरे शरीर में शीतलता का स्रोत उमड़ आया। दोनों कानों में अमृत का सिंचन हुआ। इन्द्रियाँ मोहित होकर अवश हो गयीं और हृदय में एक प्रकार का नवीन जीवन आ गया।"

सीता जी कुछ लजाकर बोलीं—"नाथ ! ऐसी बातों के कहने से ही लोग आपको 'प्रियंवद' (प्यारा, मीठा बोलने वाला) कहते हैं। जो हो, मुझ अभागिनी को स्वप्न में भी इस बात की आशा न थी कि ऐसा सौभाग्य प्राप्त होगा।"

इतना कहकर सीताजी ने सोने की इच्छा प्रकट की।

रामचन्द्र जी कहने लगे—"इस समय और किसी प्रकार की शय्या की आवश्यकता नहीं है। इसलिये मेरी जो भुजा विवाह से लेकर आज तक, क्या घर में, क्या बन में और क्या बाल्यावस्था में सदा तकिये का काम देती रही है, वही आज भी तुम्हारे लिये तकिया बनेगी।"

यह कह कर रामचन्द्र जी ने अपनी भुजा फैला दी सीता जी भी झट उस पर अपना सिर रखकर निद्रा देवी की गोद में जा लेटीं।

रामचन्द्र जी प्रेम से सीताजी की ओर देखकर प्रफुल्ललोचन हो मन-ही-मन कहने लगे—"कैसा अद्भुत चमत्कार है? जब प्यारी का मुखारविन्द देखता हूं तत्काल मेरा चित्तचकोर कृतार्थ और मेरी आत्मा आनन्द से भरपूर हो जाती है। अपूर्व दृश्य है। वास्तव में यह गृह-लक्ष्मी है। नयनों के लिये अञ्जन है। इसके शरीर के स्पर्श से वैसी ही ठंडक पड़ जाती है, जैसी कि चन्दन के लेप से। इसकी भुजलताएँ मेरे गले में पड़कर ठण्डे चिकने मोति-

यों की माला का काम देती हैं। बड़े आश्चर्य की बात है। प्राण-प्यारी की सभी बातें अलौकिक आनन्दप्रद हैं।

(२)

रामचन्द्र जी इसी प्रकार की बात मन में सोच रहे थे, जब गाढ़ निद्रा की अवस्था में सीताजी स्वप्न देखकर कहने लगीं—"हा नाथ ! तुम कहाँ रह गये ?"

स्वप्नावस्था में कही हुई सीताजी की बात सुनकर रामचन्द्र जी अपने मन में कहने लगे—"कैसा आश्चर्य है। चित्र के देखने से सीता को जिस विरह-वेदना की याद आ गयी थी, उसी की याद अब स्वप्न में फिर कष्ट दे रही है।" इतना कह सीता जी के शरीर पर हाथ फेरते-फेरते प्रेम में मग्न हो कहने लगे—"अहा ! सच्चा प्रेम भी कैसी दुर्लभ वस्तु है ! क्या सुख, क्या दुःख, क्या सम्पत्ति, क्या विपत्ति, क्या ज़वानी और क्या बुढ़ापा, कोई दशा भी क्यों न हो, यह एकसा ही बना रहता है। इसकी धारा उसी वेग से बहती रहती है, इसमें तनिक भी परिवर्त्तन नहीं होता। कुछ भी विकार उत्पन्न नहीं होता। ऐसे सच्चे प्रेम का अधिकारी होना कुछ कम सौभाग्य की बात नहीं है। किन्तु आक्षेप और खेद तो केवल यही है कि ऐसा स्नेह, ऐसा सच्चा प्रेम जगत में मिलना ही बहुत दुर्लभ है। यदि यह दुष्प्राप्य न होता तो संसार में चारों ओर आनन्द ही आनन्द, सुख ही सुख होता।"

(३)

रामचन्द्र जी की बात समाप्त भी न होने पायी थी कि इतने में एक दासी सामने आयी और हाथ जोड़ कहने लगी—"महाराज द्वार पर दुर्मुख खड़ा है। क्या आज्ञा है ?" दुर्मुख रनवास में आने-जाने वाला एक विश्वास-पात्र सेवक था। राम-

चन्द्र जी ने उसको नगर तथा देशनिवासियों की वर्त्तमान शासन सम्बन्धी सम्मति के जानने के काम पर नियुक्त कर रक्खा था। वह दिनभर इसी बात की जानने की चेष्टा करता, इधर-उधर फिरता और दिन में जो कुछ देखता-सुनता, रात को श्री रामचन्द्र जी की सेवा में आकर निवेदन कर देता। उसके आने का समाचार पाकर रामचन्द्र जी ने दासी को आज्ञा दी—"उसे शीघ्र हमारे पास भेजो।" दुर्मुख भीतर आया और प्रणाम करके हाथ जोड़ सामने आ खड़ा हुआ।

उसकी ओर देखकर रामचन्द्र जी ने पूछा—"क्यों दुर्मुख! आज कौन सी नयी बात का पता लगा?"

दुर्मुख ने उत्तर दिया—"महाराज की जय हो! चारों ओर क्या नगर में क्या देश में, प्रजा बड़े सुख-चैन से है।"

यह सुनकर श्री रामचन्द्र जी बोले—तुम सदैव आ आकर हमारी प्रशंसा की बातें ही सुनाया करते हो। यदि किसी ने हमारी कोई निन्दा की हो, किसी को हमारा कोई कार्य्य पसंद न आया हो तो कहो, हम उस को निवारण करने का, सुधारने का प्रयत्न करेंगे। हम तुम्हें प्रशंसामात्र सुनने के लिये नहीं भेजते। तुम को भेजने का प्रयोजन यही है कि हमारी प्रजा हमारे अथवा हमारे राज्य शासन के सम्बन्ध में अच्छा वा बुरा जो कुछ भी कहती हो, वह सब तुम आ कर हमें सुना दिया करो।"

पहले तो दुर्मुख नित्य प्रशंसा ही सुन कर आया करता था, परन्तु आज सीता जी के विषय में उस ने किसी के मुँह से कुछ अपवाद सुना था और उसे बुरा समझ कर अपने जी में छिपा लिया था। प्रकट करने की इच्छा न थी। अब श्री रामचंद्र जी के मुख से अपवाद अथवा दोष-कीर्त्तन की बात सुन कर दुर्मुख

चकित हो गया और किंकर्त्तव्य विमूढ़ सा थोड़ी देर तक चुपचाप खड़ा रहा। फिर बुद्धि को स्थिर और सावधान कर के बड़ा उदास हो कर भर्राये हुए स्वर से कहने लगा—"नहीं महाराज ! मैंने किसी के मुँह से भी किसी प्रकार का दोष-कीर्त्तन आप के सम्बन्ध में नहीं सुना। मैं ने आज तक कोई बुराई की बात नहीं सुनी।" दुर्मुख ने यह बात कह तो डाली, परन्तु असली बात को छिपाने और बनावटी बात कहने के कारण उस के मुख की चेष्टा और भाव-रङ्ग कुछ ठिकाने न थे। उस की इन चेष्टाओं को देख कर रामचंद्र जी के मन में संदेह हुआ। वह भाँप गये कि दाल में कुछ काला है। इस ने आज अवश्य कोई ऐसी बात सुनी है, जिसे हम से छिपाने की चेष्टा करता है। इस पर वह कहने लगे "तुम ने आज कुछ अपवाद की बात सुनी है। वृथा छिपा रहे हो। क्या सुना है ? कह डालो। विलम्ब न करो। यदि न कहोगे तो हम बहुत रुष्ट होंगे और इस जगत् में फिर कभी तुम्हारा मुख न देखेंगे।" रामचंद्र जी का इतना आग्रह देख कर दुर्मुख घबड़ा गया और अपने मन में सोचने लगा—"हाँ ! मैं आज कैसे घोर सङ्कट में फँसा। राजरानी सीता जी के विषय में ऐसी लोकनिन्दा की बात रामचंद्र जी को किस प्रकार सुनाऊँ। मैं बहुत मंदभाग्य हूँ, नहीं तो ऐसे काम का भार ही अपने सिर पर क्यों लेता ? किन्तु अब क्या हो सकता है, जब पहले ही आगा पीछा सोच कर काम न किया ? यथार्थ बात प्रभु को सुनाये बिना छुटकारा कहाँ ?" अपने मन में यह स्थिर कर के कम्पित स्वर से बोला—"यदि आप की इच्छा यही है कि मैं ठीक-ठीक बात आप से कह दूँ, तो कृपया यहां से उठ कर किसी अन्य स्थान में चलिये। मैं मृत्यु के आ जाने पर भी वह बात यहां नहीं कह

सकता।" रामचंद्र जी दुर्मुख की बात सुनने के लिये इतने उत्सुक हुए कि सीता जी के जागने की बाट भी न देखी, धीरे-धीरे अपना हाथ उन के सिर के नीचे से निकाला और दुर्मुख को साथ ले तुरन्त एक दूसरे मकान की ओर चल दिये।

एकांत स्थान में जा कर रामचंद्र जी ने बड़ी व्यग्रता से दुर्मुख से कहा—"अब विलम्ब न करो। जो कुछ सुना है सब सच-सच कह सुनाओ। तुम्हारी चेष्टाओं और आकार-प्रकार को देख कर मेरे मन में नाना प्रकार के संदेह उठ रहे हैं।" दुर्मुख बोला—"महाराज सर्वनाश की जो बात मैंने आज सुनी, उसे आपकी सेवा में निवेदन कर सकूंगा या नहीं, यही सोचकर मेरे शरीर का रक्त सूखा जा रहा है। परन्तु जब मैंने आगा-पीछा सोचे और हिताहित का विचार किये बिना ही इस काम का भार अपने सिर पर ले लिया तो अब बचाव कहाँ? अब तो सब कुछ कहना ही होगा। मैंने जो कुछ सुन पाया है, अक्षर, अक्षर वही निवेदन करूँगा। कृपया मुझे क्षमा कीजियेगा। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। सारी प्रजा मुक्तकण्ठ से आपके राज्य की सुशासन-प्रणाली की प्रशंसा कर रही है। लोग एकमत होकर कहते हैं कि हम इस राज्य में परमसुखी हैं। आज तक इस देश में किसी भी राजा ने ऐसी अच्छी रीति-नीति से राज्य नहीं किया। किन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जो सीताजी के सम्बन्ध में निन्दा की बात कहते हैं। वह कहते हैं कि हमारे राजा का स्वभाव बहुत ही सीधा-सादा, निष्कपट और सरल है। बहुत ही महत् और उदार है। सीताजी रावण के महल में बहुत दिनों अकेली रहीं; परन्तु महाराज फिर भी उनमें कोई निन्दनीय बात या बुराई न देख झट उन्हें अपने महल में ले आये। अब हमारी स्त्रियां भी दूषित हो

जावेंगी। यदि हम लोग कुछ कह सुनकर उन्हें समझाने की चेष्टा करेंगे तो वह सीता जी का नाम लेकर हमें निरुत्तर कर दिया करेंगी। अब उनकी रक्षा और शिक्षा कठिन हो जायगी। राजा ही धर्म-अधर्म का अवतार होता है। "यथा राजा तथा प्रजा"। जिस रास्ते पर राजा चले उसी पर प्रजा को भी चलना पड़ता है। महाराज! जो कुछ सुना था आप से कह दिया। मेरा अपराध क्षमा कीजिये। हे परमात्मा! आज मेरा दुर्मुख नाम यथार्थ हो गया।" यह कहकर और आज्ञा ले दुर्मुख रोता हुआ वहाँ से चला गया।

(४)

दुर्मुख के मुख से सीता जी के अतीव शुद्ध और पवित्र चरित्र पर कलंक लगाने की बात सुनकर रामचन्द्र जी जड़ से कटे वृक्ष की तरह "हाय! मैं मर गया!" कहकर भूमि पर गिर पड़े। आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और विलाप-परिताप करके कहने लगे—"हाय! आज कैसे सर्वनाश की बात सुननी पड़ी। इसकी अपेक्षा तो यह कहीं अच्छा था कि मेरी छाती पर बज्राघात हो जाता! मैं आज तक क्या इसीलिये जीवित था? मैं बहुत ही मन्दप्रारब्ध हूं। नहीं तो क्यों राज्य छोड़कर वनवास भोगना पड़ता? न बन में जाता और न पापी रावण पञ्चवटी में आकर सीता को हर ले जाता और न ऐसी पवित्र चरित्र वाली कुल-रमणी पर ऐसा दोष लगाया जाता और यही दोष एक बार एक अद्भुत और अद्वितीय उपाय द्वारा दूर होकर फिर नया हो जाता। विधाता ने मुझे दुख भोगने के लिये ही इस संसार में जन्म दिया है। क्या करूँ, कुछ भी समझ में नहीं आता। कुछ वार-पार नहीं सूझता। यह लोक-निन्दा बड़ी कठिन है। इस लोका-

पवाद को सुना अनसुना करूँ या निरपराधिनी सीता का परित्याग करूँ ? कुछ भी स्थिर नहीं कर सकता। मेरी-सी दशा किसी की न हुई होगी।"

इसी प्रकार परिताप करके रामचन्द्र जी शोकातुर हुए कुछ देर तक नीचे को दृष्टि किये पड़े रहे और फिर लम्बी साँस लेकर कहने लगे—"अच्छा! अब इस विषय में और अधिक सोच-विचार से क्या लाभ ? जब सारे राज्य का भार, उत्तरदायित्व अपने सिर पर लिया है तो प्रजा-रञ्जन, प्रजा को प्रसन्न रखना ही अपना प्रधान कर्त्तव्य और परमधर्म है। इस लिये अब सीता का परित्याग करना ही होगा। हा हतविधे! क्या तेरे मन में यही था ?" इतना कह कर रामचन्द्र जी मूर्च्छित हो गये। कुछ देर पीछे जब चेतनता आयी तो बड़े करुण स्वर से कहने लगे—"यदि यह चेतनता न आती तो बहुत अच्छा होता। क्योंकि निरपराधिनी सीता का परित्याग करके दुर्निवार्य पाप का भागी न बनना पड़ता। अष्टावक्र मुनि के सम्मुख मैंने यही कहा था कि प्रजा के रञ्जन के लिये यदि मुझे सीता तक का परित्याग भी करना पड़े तो वह भी सहर्ष करूँगा। क्या इसी दुर्घटना के लिये मेरे मुँह से ऐसा विषम वचन निकला था ? हा प्रिये जानकी! हा प्रियभाषिणी! हा राम-मय-जीविते! मैंने कभी स्वप्न में भी न सोचा था कि अन्त में तुम्हारी यह दशा होगी। तुम ऐसे नराधम मन्द भाग्य और दुराचारी के पल्ले पड़ी हो कि एक घड़ी के लिये भी तुम्हारे भाग्य में सुख भोगना नहीं लिखा। तुमने विष-लता को कल्पतरु समझ कर उसका आश्रय लिया। माना कि मैं ने बड़े उत्तम कुल में जन्म लिया है, परन्तु मेरे कर्म तो चण्डालों की अपेक्षा भी बहुत नीच हैं, नहीं तो बिना अपराध तुमको घर

से बाहर निकालने पर क्यों उद्यत होता ? यदि अब भी मेरे प्राण निकल जायँ, तो भी इस असह्य दुःख से छुटकारा मिल जाये। अब और जीने से क्या लाभ ? जीवन की तो अब आवश्यकता ही नहीं रही। सारा जगत् अब मुझे शून्य और निर्जन बन दिखाई दे रहा है।

(५)

ऐसी ही बातें सोचते-सोचते रामचन्द्र जी बड़े व्याकुल हो गये। उनका शरीर कांपने लगा। थोड़ी देर तक चुपचाप लेटे रहे फिर ठण्डी साँस लेकर प्रकार विलाप करना आरम्भ किया—"हाय ! क्या हुआ ? माता ! पिता जी ! हा देवि वसुन्धरे ! भगवति अरुन्धति ! कुलगुरु वशिष्ठ ! महर्षि विश्वामित्र ! प्यारे मित्र विभीषण ! मेरे परम उपकारी मित्र सुग्रीव ! हा प्यारे हनुमान ! तुम कहाँ हो ? तुमको मालूम नहीं कि राम सर्वनाश करने के लिये तैयार है। अब मुझे ऐसे-ऐसे महात्माओं का नाम लेने का अधिकार नहीं है। मुझ सा पापी यदि इन पुण्यात्माओं का नाम भी ले तो निस्सन्देह उनको भी मेरा पाप कलुषित कर देगा। जब मैं सीता जैसी भोली भाली, शुद्धाचारिणी, पतिप्राणा कुल-रमणी को सर्वथा निरपराध जानता हुआ भी इस प्रकार छोड़ देने के लिये उद्यत हो गया हूँ तो भला मुझ-सा पापी, घोर कुकर्मी और महापातकी इस संसार में और कौन होगा ? राम को अपना एकमात्र आधार आश्रय समझने वाली भोली भाली सीता ! तुम्हें क्या मालूम था कि पाषाणहृदय राम तुम्हारी दुर्गति करेगा ? तुम ने यह बात कभी स्वप्न में भी न सोची होगी ? इस में सन्देह नहीं कि राम का हृदय वज्र का है, नहीं तो क्या अब फट न जाता ? शायद परमात्मा ने जान-बूझ कर ही मेरा हृदय ऐसा

कठोर बनाया है। यदि ऐसा न होता तो मैं ऐसे-ऐसे कठोर काम कैसे कर सकता ?"

इस तरह विलाप करके रामचन्द्र जी फिर उसी कमरे में आये, जहाँ सीता को सोते हुए छोड़ गये थे। सीता के सामने खड़े हो हाथ जोड़ कर कहने लगे—"प्रिये! अभागा राम इस जन्म के लिये तुमसे विदा होना चाहता है।" फिर पृथ्वी माता को सम्बोधन करके कहा—"देवि वसुन्धरे! पापात्मा राम के छोड़ देने पर अपनी पुत्री सीता जी की देखभाल तुम्हीं करना।" यह कह कर असह्य शोकाग्नि ज्वाला से भस्म हुए रामचन्द्र जी बाहर निकल आये और अपने भाइयों से परामर्श करने के लिये मन्त्र गृह में गए।

तीसरा काण्ड

—☆—

सीता का परित्याग

रामचन्द्र जी राजसिंहासन पर जा बैठे और भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को शीघ्र बुलाने के लिये सेवक भेजा। शीघ्र बुलाने की बात जब भाइयों ने सुनी तो वह बड़े चकित हुए और अपने-अपने मनमें नानाप्रकार के तर्कवितर्क करने लगे कि संध्या-समय तो रामचन्द्र जी जानकी जी के साथ बातचीत कर रहे थे, अब अचानक मन्त्र-गृह में जाने और हमें जल्दी बुलाने का क्या कारण है ? इस प्रकार सोचते-सोचते भवन में जा पहुंचे। देखा कि गाल पर हाथ रक्खे रामचन्द्र जी अकेले सिंहासन पर बैठे हैं और उनकी आंखों से आँसुओं की लगातार झड़ी

लगी हुई है। बड़े भाई की ऐसी दशा देख कर लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न तीनों बहुत उदास और व्याकुल हो गये, पर रामचन्द्र जी के इस दशा को प्राप्त होने का कुछ भी कारण न समझ सके और तीनों शोक-सागर में डूबे हुए उनके सामने जाकर खड़े हो गये। उन्होंने समझा कि शायद कोई बड़ी भारी विपत्ति हम पर टूटने वाली है, इस लिये किसी को भी रामचन्द्र जी से कुछ कहने-पूछने का साहस न हुआ और वह सब भी शोकातुर होकर बड़े भाई की तरह रोने और आँसू बहाने लगे।

थोड़ी देर पीछे रामचन्द्र जी ने उमड़ते हुए शोक के वेग को रोककर और अपनी आँखों से आँसू पोंछकर भाइयों को अपने सामने बैठ जाने की आज्ञा दी। तीनों भाई बैठ गये और रामचन्द्र जी के मलिन मुख की ओर देखने लगे। रामचन्द्र जी की आँखें फिर आँसू बरसाने लगीं। यह देख वह भी अधीर हो उठे। अब लक्ष्मण से रहा न गया और पूछने लगे—"आर्य्य! आपकी यह दशा देखकर हम बहुत व्याकुल हो रहे हैं, धैर्य्य हाथ से जाता रहा है। आपका रङ्ग-ढङ्ग भाव-ताव देखकर ऐसा मालूम होता है कि हम पर कोई भारी दुस्सह विपत्ति आ पड़ी है। शान्त महासागर कभी छोटे-मोटे कारणों से विचलित नहीं होता। नित्यप्रति चलने वाली साधारण वायु के वेग से क्या कभी हिमालय हिल सकता है? तो फिर क्या कारण है जो आप ऐसे शोकविह्वल और अधीर हो रहे हैं? कृपापूर्वक उसे विस्तार से कहकर हमारे प्राणों को बचाइये। इस समय आपका मुख-कमल सन्ध्या के कमल और प्रभात के चन्द्रमा की तरह तेजहीन और आभाहीन हो रहा है। उसपर कान्ति दिखाई नहीं देती। अब विलम्ब न कीजिये। शीघ्र ही सब कुछ कह डालिये। शोक और दुःख के

कारण हमारी छाती फटी जाती है।"

२

लक्ष्मण के इस प्रकार बार-बार पूछने पर रामचन्द्र जी ने एक लम्बा साँस भरा और मारे शोक के बेचैन होकर कहने लगे—"प्यारे भरत! प्यारे लक्ष्मण! प्यारे शत्रुघ्न! तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो और तुम्हीं से मेरा जीवन है। तुम्हारे लिये ही मैं राज्य का दुस्सह भार अपने कन्धों पर उठाये हुए हूं। मेरे हित के साधन में और अहित के दूर करने में तुम्हीं मेरे सहायक हो। इस समय मैं एक बड़े घोर सङ्कट में पड़ा हूँ और उससे छुटकारा पाने की इच्छा से ही मैंने तुम्हें याद किया है। आयी हुई विपत्ति को दूर करने, उससे बचने का केवल एक ही उपाय है। मैंने भली भाँति सोच-समझ लिया, अच्छी तरह विचार कर लिया है। अंत में केवल यही एक उपाय सूझा है। मैं तुम्हें सब सुनाता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। इस विषम सङ्कट में से निकलने के लिये जो उपाय उचित हो करना चाहिये।

यह कहकर रामचन्द्र जी फिर चुप हो गये। उनका दिल भर आया और अश्रुधारा बह निकली। रामचन्द्र जी की यह दशा देख तीनों भाई पहले से भी बेचैन हो गये और मन-ही-मन सोचने लगे कि लक्षणों से ऐसा दिखाई देता है कि कुछ अनर्थ हो गया है, सर्वनाश निकट है। बुद्धि तो उन्होंने बहुत दौड़ाई, पर अटकल से यह स्थिर न कर सके कि वास्तव में बात क्या है। इसलिये तीनों भाई वृत्त जानने की इच्छा से रामचन्द्र जी का मुँह ताकने लगे।

थोड़ी देर तक तो रामचन्द्र जी कुछ बोल न सके। फिर एक लम्बा ठण्डा साँस लेकर कहने लगे—"प्यारे भाइयो! सुनो।

जितने राजा हमसे पहले इक्ष्वाकु-वंश में जन्म ले चुके हैं, वह अपने प्रबल प्रताप, प्रजापालन और अन्यान्य अनेक अलौकिक कार्यों के कारण इस परम पवित्र राजवंश को त्रिलोकी में सुप्रसिद्ध कर गये हैं। मुझ से अभागे ने आज तक इस कुल में जन्म नहीं लिया; क्योंकि मैंने इस चिर-पवित्र और त्रिभुवन-विख्यात उज्वल वंशरूपी हीरे को अपयश और अपमानरूपी कीचड़ से भरकर मलिन कर दिया है और इसका तेज खो दिया है। लक्ष्मण! तुम से कोई भी बात छिपी नहीं, सब कुछ जानते हो। जब हम तीनों पञ्चवटी में रहते थे, उन दिनों दुराचारी रावण हमारी अनुपस्थिति में सरला सीता को छल और बल से हर ले गया था। सीता बहुत दिनों तक उस पापी के घर अकेली रहीं। अंत में हमने सुग्रीव की सहायता से उस दुष्ट को यथोचित दण्ड देकर सीता को वापिस लिया। मैं उसी सीता को, जो मुद्दत तक दूसरे के घर में रही है, फिर अपने घर में ले आया हूँ, इस कारण नगरनिवासी और राष्ट्रवासी अप्रसन्न और असन्तुष्ट होकर निन्दा-चर्चा कर रहे हैं। मुझे अब यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी है कि सीता को छोड़ दूँ। राजा का परम धर्म्म यही है कि हर प्रकार से अपनी प्यारी प्रजा को प्रसन्न रक्खे। यदि मैं यह धर्म-पालन कर सका, प्रजा-रञ्जन मुझसे न हो सका तो फिर अनार्यों की तरह मेरे जीने से लाभ ही क्या हो सकता है? मैं चाहता हूँ कि तुम सब भी प्रसन्नतापूर्वक मेरे साथ सहमत हो जाओ। आयी हुई विपदा से छुटकारा पाने का यही एक उचित उपाय है।"

३

बड़े भाई की बात सुनकर तीनों भाई बड़े दुखी हुए। शोक, भय और विस्मय के समुद्र में डूबे थोड़ी देर तक नीचे को

मुँह किये चुपचाप बैठे रहे। यह भी निश्चय न कर सके कि अब क्या करना चाहिये। फिर लक्ष्मण बड़े नम्र और कातर वचन बोले—"आर्य! आपकी जब जो आज्ञा होती है वह हमारे लिये सर्वथा शिरोधार्य होती है, उसको पालन करने में हम कभी चूं-तक भी नहीं करते और अब भी हममें इतनी शक्ति नहीं है कि आपकी आज्ञा का उल्लङ्घन करें, पर आपकी प्रतिज्ञा सुनकर हम मरे जा रहे हैं। कभी एक क्षण के लिये भी हमारे मन में यह शङ्का पैदा न हुई थी, हमने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि यहाँ आकर ऐसी सर्वनाश की बात सुननी पड़ेगी। जो कुछ भी हो, मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ; यदि आज्ञा हो, तो कहूँ।"

इस पर रामचन्द्र जी ने कहा—"प्यारे लक्ष्मण! जो कुछ कहना चाहते हो बेखटके कहो।"

४

लक्ष्मण बोले—"इसमें सन्देह नहीं कि आर्य्या जानकी अकेली रावण के घर में रहीं और रावण दुराचारी था, परन्तु जब उस दुष्ट को यथोचित दण्ड देने के बाद सीताजी आपके सामने लायी गयीं, तो आपने लोक-निन्दा और अपवाद के भय से सहसा उन्हें ग्रहण नहीं किया। पर जब एक अलौकिक परीक्षा के द्वारा सारे संसार को सीताजी की पवित्रता का परिचय मिल गया और सब को इस बात का भली भाँति विश्वास भी हो गया तो आपने उन्हें स्वीकार किया था। यह परीक्षा सब के सामने, प्रजा के लोगों की उपस्थिति में हुई थी। हम तुम दोनों भाई, हमारी सेना और सेनापति और ब्राह्मण देवर्षि और महर्षि भी परीक्षा के समय मौजूद थे। सबने साधुवाद से जानकी को निर्दोष और शुद्धाचारिणी स्वीकार कर लिया था। इस लिये अब किसी

को भी यह अधिकार नहीं है कि सीताजी के पवित्र आचरण को पराये घर रहने के कलङ्क से दूषित करने की चेष्टा करे। फिर यह समझ में नहीं आता कि आपने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की है? यह उचित नहीं है कि आप जैसे धीर और महात्मा पुरुष का चित्त भी निर्मूल लोकापवाद और निन्दा के झोंकों से डगमगा जाये। साधारण लोगों में उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय का विवेक नहीं होता, उनकी विचार-शक्ति भी न्यून और अपूर्ण होती है। जो कुछ उनके मनमें आता है, कह बैठते हैं, सोचते-विचारते नहीं। जो कुछ किसी के मुख से सुन पाया, उसी को सच समझ लिया और विश्वास कर बैठे। ऐसे लोगों की बातों पर विश्वास करने से संसार का कार्य नहीं चल सकता। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जानकी जी सर्वथा शुद्धाचारिणी हैं और मुझे यह भी विश्वास है कि आपको भी इस विषय में लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। जिस अद्भुत अलौकिक परीक्षा के द्वारा सीता की पवित्रता का परिचय दिया गया है, उससे किसी के दिल में भी कोई सन्देह रह नहीं जाता। ऐसी दशा में भी यदि आप सीताजी को छोड़ देंगे, उनका परित्याग करेंगे तो सारा जगत् हमें मूर्ख समझेगा और हम को इस घोर पाप, महा अनर्थ का भागी बनाना पड़ेगा। इस लिये अब उचित यही है कि सब कुछ सोच-विचार कर कर्त्तव्य का निश्चय किया जाये। हम तो आपकी आज्ञा पालन करने वाले हैं, जो आज्ञा होगी निःशङ्क भाव से पालन की जायेगी।"

५

यह कह लक्ष्मण जी चुप हो गये। रामचन्द्रजी थोड़ी देर तक कुछ न बोले, फिर कहने लगे—"प्यारे लक्ष्मण! सीता के पवित्र और शुद्ध आचरण वाली होने में मुझे तनिक भी सन्देह

नहीं है। मैं यह भी मानता हूँ कि साधारण लोग जो कुछ सुन पाते हैं या जो कुछ उनके जी में जम जाता है उसी पर विश्वास कर बैठते हैं। परन्तु प्रजा का इसमें क्या अपराध है ? अपराध तो केवल हमारी ही अदूरदर्शिता और विचार-हीनता का है। जब हम सीता को अयोध्या में लाये थे, यदि पुरवासियों के सामने उसकी परीक्षा कर लेते तो कभी किसी को कुछ कहने सुनने का अवसर न मिलता। इससे सब सन्तुष्ट हो जाते और प्रजा के लोगों के चित्त में कभी ऐसे विचार न उठते। इसमें सन्देह नहीं कि सीता ने अलौकिक परीक्षा द्वारा अपने शुद्धाचरण और पवित्रता का यथेष्ट प्रमाण दे दिया है, परन्तु प्रजा उस परीक्षा पर विश्वास नहीं रखती। ऐसा मालूम होता है कि कुछ लोगों को परीक्षा की ख़बर तक नहीं है। इस लिये वह सीता जी की शुद्धता पर सन्देह कर रहे हैं। सन्देह का कारण यही दो बातें हैं, रावण का दुराचारी होना और सीता का चिरकाल तक उसके यहाँ वास करना। मैं बेचारी प्रजा का कोई दोष नहीं देखता। यह सब मेरे ही प्रारब्ध का खेल है, यह सब उपद्रव मेरे ही भाग्य-चक्र ने खड़े किये हैं। यदि मैं राजा न होता और धर्मानुकूल चल कर प्रजारञ्जन की कठोर प्रतिज्ञा न करता तो सम्भव था कि मैं अमूलक लोकापवाद अथवा निन्दा-चर्चा का ध्यान न करके, उसका निरादर करके बेखटके अपना जीवन व्यतीत करता। पर यदि राजा होकर मैं अपनी प्रजा को सन्तुष्ट न कर सका तो मेरे जीवन से लाभ ही क्या है ? प्रजा सीता को सती नहीं किन्तु असती समझती है और उनका यह विश्वास यत्न करने पर भी दूर नहीं किया जा सकता। ऐसी दशा में यदि मैं सीता को अपने पास रक्खूँगा तो वह समझेंगे कि मैं असती दुराचारिणी से प्रेम

करता हूँ और इस लिये वह मुझ से भी घृणा करने लगेंगे। अपनी ही प्रजा की दृष्टि में घृणित और निन्दित होने से तो मर जाना ही अच्छा है। मैं प्रजारञ्जन के निमित्त अपने प्राण तक त्यागने के लिये तय्यार हूँ। तुम मेरे जीवन-सर्वस्व हो, प्राणों से भी बढ़ कर प्यारे हो, पर यदि प्रजा के कारण तुम्हें भी छोड़ना पड़े तो उसकी प्रसन्नता के लिये तुम्हारा परित्याग करने में भी सङ्कोच न करूंगा। जब ऐसी दशा है, तो सीता को छोड़ देना कोई कठिन काम नहीं है। इस लिये तुम चाहे जो कहो और मेरे इस कार्य्य में अन्याय ही क्यों न हो, पर मैं निश्चय कर चुका हूँ कि सीता को छोड़ कर कुल-कलङ्क को धो डालूँगा, अपने कुल के यश और कीर्त्ति को कीचड़ से बचाऊँगा। यदि तुम्हें मुझ पर दया आती हो और तुम्हारे हृदय में मेरे लिये स्नेह हो तो इस विषय में मुझ से अब और कुछ मत कहना सुनना। यदि सीता घर में रहेगी तो मुझे अपने जीवन का अन्त करना होगा। या सीता रहेगी या मेरे प्राण। मैंने सोच-विचार कर यह निश्चय किया है कि इन दोनों में से एक ही रहेगा।"

रामचन्द्रजी ने एक गहरा साँस लिया, उनकी आँखों से आँसू बहने लगे और मुँह नीचे को झुक गया। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद फिर लक्ष्मण से बोले—"वत्स! सब प्रकार की चिन्ता और सोच मन से निकाल दो, और मेरी आज्ञा का पालन करो। इस लोकापवाद के उठने से पहले ही सीता ने तपोवन को जाने की इच्छा प्रकट की। इसी बहाने से तुम उन्हें ले जाओ और महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आओ। मैं इसी से प्रसन्न हूँगा। कल प्रातःकाल ही मेरी आज्ञा का पालन करो। तुम ने आज तक कभी मेरी एक भी आज्ञा नहीं टाली, अब भी किसी

प्रकार का विलम्ब, ढील न हो। इस बात का ध्यान रखना कि जब तक गङ्गा के पार न चले जाओ सीता को निर्वासन की बात न बतायी जाये तुम्हारे हृदय में दया बहुत है इस लिए पहले ही से मैंने तुम्हें सावधान कर दिया है।"

अपनी बात समाप्त करके रामचन्द्रजी फिर नीचे को मुँह करके अश्रुधारा बहाने लगे। तीनों भाई भी ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा सुन कर कुछ कहे-सुने बिना बैठ कर रोने लग गये। थोड़ी देर बाद रामचन्द्रजी ने फिर लक्ष्मणजी से सीता को बन में छोड़ आने के लिये कहा और फिर सब आराम करने, सोने के लिये चले गये। चारों भाइयों ने यह रात अत्यन्त दुःख से काटी।

चौथा कांड

—:o:—

तपोवन-यात्रा

अगले दिन सवेरे ही लक्ष्मण ने सुमन्त को बुला कर कहा—"सारथी! शीघ्र ही रथ जोत कर, तय्यार करके, ले आओ! जानकी जी तपोवन देखने जायेंगी।" आज्ञा पाते ही सुमन्त रथ जोतने चला गया। इधर लक्ष्मण जब सीता जी के कक्ष में गये तो क्या देखते हैं कि तपोवन में काम आने वाला सब सामान पहले ही जुटा रक्खा है और सीता जी चलने को तय्यार हो रथ के आने की बाट देख रही हैं। लक्ष्मण ने "आर्य्ये! प्रणाम करता हूँ" कह कर अभिवादन किया और जानकी ने "वत्स! चिरजीवी और चिरसुखी रहो" कहकर आशीर्वाद दिया।

लक्ष्मण ने कहा—"आर्य्ये! रथ तय्यार है। अब कुछ भी

विलम्ब न समझिये।" सीता जी बहुत प्रसन्न होकर कहने लगीं—"वत्स ! आज प्रातःकाल तपोवन को जायेंगे, यह बात सोचते-सोचते मारे आनन्द के मुझे रात भर नींद नहीं आयी । मैं तो बिल्कुल तय्यार बैठी हूँ। रथ के आने की देर है, आया और मैं सवार हुई। मेरे मन में सन्देह था कि सम्भव है आर्य्य-पुत्र मुझे कठोर गर्भा, होने के कारण इस समय तपोवन जाने की आज्ञा न दें, पर उन्होंने अत्यन्त कृपापूर्वक बड़ी प्रसन्नता से अनुमति दे दी। उस समय मुझे जितना आनन्द हुआ मैं कह कर नहीं बतला सकती। निश्चय यह मेरी पहले जन्म-जन्मान्तरों में की हुई तपस्या का ही फल है कि ऐसे अनुकूल पति मिले । संसार में ऐसी सौभाग्यवती और कौन है, जिसे आर्य्य पुत्र-जैसा पति मिला हो ? इन के स्नेह, नम्रता और दया का जब मेरे दिल में ख्याल आता है, मैं फूली नहीं समाती। मुझे अपने सौभाग्य का गर्व हो जाता है। मैं देवताओं से सदा यही प्रार्थना किया करती हूँ, यदि अगले जन्म में भी स्त्री बनना हो तो मैं आर्य्य पुत्र की ही पत्नी बनूँ। यही मेरे स्वामी हों।" यह बात समाप्त करके सीता फिर बड़े हर्ष से बोलीं—"वत्स ! बनवास के समय ऋषि-पत्नियों के साथ मेरा बड़ा स्नेह और मेल जोल हो गया था। यह सब वस्त्रा-भूषण उन्हीं को देने के लिये मैंने लिये हैं।"

इतना कह कर सीता ने सब सामान लक्ष्मण जी को दिखलाया। उसी समय एक दासी अन्दर आयी और बोली कि सुमन्त रथ लिये द्वार पर खड़ा है। सीता जी तपोवन देखने के लिये बहुत उत्सुक हो रही थीं। तुरन्त उठ खड़ी हुईं और सब सामान ले लक्ष्मण के साथ रथ में चढ़ बैठीं । थोड़ी देर में ही रथ अयोध्या से बाहर हो गया। नगर के बाहर का दृश्य देख कर

जानकी बड़ी प्रसन्न हुईं और कहने लगीं—"वत्स लक्ष्मण ! मैं अब जो मनोहर दृश्य देख रही हूँ, यह सब आर्य्य पुत्र की ही कृपा का फल है। यदि वह प्रसन्नता-पूर्वक मुझे यहाँ आने को अनुमति न देते, तो भला यह सब बातें क्यों कर देखने में आतीं ? आर्य्य पुत्र ने बड़ी प्रसन्नता से मेरी प्रार्थना स्वीकार की।" भोली भाली सीता के आनन्द को देख कर और रामचन्द्र जी ने उन के प्रति जो अनुकूलता वा प्रसन्नता दिखाई थी उसका ख्याल आते ही लक्ष्मण जी शोक से विह्वल हो उठे। लक्ष्मण ने उमड़े हुए शोक के वेग को बड़ी कठिनता से रोका और अपने दिल के भावों को यत्न से छिपा कर वह भी सीता जी की तरह अपनी प्रसन्नता दिखाने लगे।

२

कुछ दूर तक इसी प्रकार चले आये। एक जगह सीता जी बड़ी उदास होकर कहने लगीं—"वत्स ! थोड़ी ही देर हुई मैं बहुत प्रसन्न थी, पर अब सहसा मेरा भाव कुछ का कुछ होता जा रहा है। मेरी दायीं आँख लगातार फड़क रही है, सारा शरीर काँप रहा है और जी बहुत व्याकुल हुआ जाता है। इस व्याकुलता और दुःख का कारण क्या है, कुछ मेरी समझ में नहीं आता। न जाने आर्य्य पुत्र कैसे होंगे ? क्या उन के लिये कोई अशुभ घटना तो नहीं घटी ? परम प्रिय भरत वा शत्रुघ्न का तो कुछ अनिष्ट नहीं हुआ ? भगवान ऋष्यशृङ्ग के आश्रम से तो कोई अशुभ संवाद नहीं आ गया ? परमात्मा जाने, कौन कैसे है ? जो हो, लक्षणों से तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि अवश्य ही सर्वनाश कर देने वाली कोई दुर्घटना हुई है। नहीं तो यह किस प्रकार सम्भव था कि ऐसे आनन्द के समय में व्याकुलता और घबराहट

मेरे चित्त पर छा जाती ? प्रिय लक्ष्मण ! बताओ तो यह क्या हो रहा है ? मेरा मन इस प्रकार डाँवाडोल क्यों हो रहा है ? अब तो मैं तपोवन भी देखना नहीं चाहती । जी यही चाहता है कि अयोध्या को लौट चलें ! लक्ष्मण ! आर्य्यपुत्र ने कहा था कि वह भी हमारे साथ तपोवन को आयेंगे । वह आवेंगे वा नहीं ? उनके आने की कुछ आशा भी है ? चलती बेर मैं तुमसे यह बात पूछना भूल गयी थी । उनके न आने से ही मेरे मन में नाना प्रकार के सन्देह उठ रहे हैं । प्रिय लक्ष्मण ! बताओ तो अब मैं क्या करूँ ? मेरे चित्तकी व्याकुलता और बेचैनी दम-बदम बढ़ती ही जा रही है । रावण के हर ले जाने से पहले जो दशा मेरे मन की हुई थी वही अब भी हो रही है । क्या इस बार भी कोई वैसी ही दुर्घटना होगी ? परमात्मा जाने क्या होगा ! अब तो जी में आता है कि यदि तपोवन देखने न आती तो बहुत अच्छा होता । आर्य्य-पुत्र के पास होने पर ही किसी दुर्घटना का होना सम्भव न था । इस समय कभी कभी मेरे मन में ऐसी बुरी बुरी भावनाएं उत्पन्न होती हैं कि शायद अब इस जन्म में आर्यपुत्र के दर्शन नसीब न होंगे ।

जब लक्ष्मण ने सीता जी को इतना बेचैन देखा और उनके कातर वचन सुने तो वह भी अत्यन्त दुखी और शोकातुर हो गये । लक्ष्मण ने यत्न-पूर्वक अपने भावों को छिपाने की चेष्टा की और मलिन मुख से बोले—"आर्य्ये ! घबराओ मत ! परमात्मा सर्वथा हमारा मङ्गल ही करेंगे । सबको छोड़कर आयी हो, इसलिये सम्भव है अकेले होनेके कारण ही आपका जी बेचैन हो रहा हो ! आप अधीर न हों । थोड़ी देर में सारी घबराहट और बेचैनी जाती रहेगी । ऐसी दशा सभी की हो

जाया करती हैं ! मन बड़ा परिवर्त्तनशील है । इसलिये आप चिन्ता को मन से दूर कीजिये।"

सीता जी लक्ष्मण का उदास मुख देखकर और उनकी भर्रायी हुई आवाज़ सुनकर और भी दुखी हो गयीं और पूछने लगीं—"प्रिय लक्ष्मण ! तुम्हें बेचैन देखकर मेरा सन्देह और भी बढ़ता जाता है। मैंने तुम्हें पहले कभी इतना उदास नहीं देखा। यदि कोई दुर्घटना हुई है, कुछ अनिष्ट हो गया है, तो मुझे साफ साफ बता दो । कहो, आर्य्यपुत्र तो सर्वथा सकुशल हैं ? कल दोपहर के बाद मैंने उन्हें फिर तुम्हारे साथ नहीं देखा। मुझे विश्वास है कि यदि उन्हें देख पाती, तो इतनी घबराहट कदापि न होती।

इस पर लक्ष्मण ने उत्तर दिया—"जानकी जी ! घबराइये नहीं। आपको शोकातुर और दुखी देखकर मैं बेचैन हो गया था ! यही कारण है कि आपको मेरा मुख उदास और मेरा स्वर बिगड़ा हुआ मालूम हुआ । इससे आप अपने मन में किसी प्रकार की चिन्ता न कीजिये । आप जितना सोचेंगी, मन में तर्क वितर्क करेंगी, आपकी चिन्ता और घबराहट उतनी ही बढ़ेगी और आप को उतना ही शोक भी होगा।"

३

इसी तरह की बातें करते-करते वह गोमती नदी के तट पर जा पहुँचे । सायंकाल का समय था । और बाह्य जगत् को प्रकाशित करने वाले भगवान सूर्य्य अस्ताचल की चोटी पर पहुँच चुके थे । गोमती के तीर पर विचित्र शोभा थी । कैसा ही अशान्त और व्याकुल चित्त वाला मनुष्य क्यों न होता, उस समय उसका चित्त भी वहाँ स्थिर और शान्त हुए बिना न रहता और

उसे अनुपम आनन्दलाभ होता। सौभाग्यवश सीता जी भी गोमती के तट की शोभा का आनंद उठाने में तल्लीन होकर अपनी घबराहट और दुःख-क्लेश भूल गयीं। इससे लक्ष्मण जी को बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ। रात को वहीं ठहरे। रास्ते के श्रम और चित्त की व्याकुलता के कारण सीता जी बहुत थकी-माँदी हो गयी थीं। लेटते ही निद्रा-देवी ने आ घेरा। जब तक सीताजी जागती रहीं लक्ष्मण उनके मनोविनोद के लिये मनोहर बातें सुनाते रहे। सीता जी दिन की तरह रात को अधीर और व्याकुल नहीं रहीं।

प्रातःकाल होते ही आगे चले। मार्ग में आने वाले मनोहर दृश्यों और रम्य स्थानों को देख कर सीता जी बहुत प्रसन्न हुई। पहले दिनकी-सी घबराहट और बेचैनी होने का कोई लक्षण दिखाई न दिया।

होते-होते रथ भागीरथी के तट पर पहुँचा। गङ्गा के उस पार पहुँच कर सीता जी का जन्मभर के लिये परित्याग करना होगा, इस बात का ध्यान आते ही लक्ष्मण का हृदय मानों शोक-सागर बन गया और वह उसमें डुबकियाँ लेने लगे। अब वह असली बात छिपाने में असमर्थ थे, उनके आँसुओं का वेग न रुका। जब सीता जी ने यह दशा देखी तो वह बड़ी दुखित हुई और पूछा—"वत्स ! क्यों तुम्हारा भाव, मन ऐसा खिन्न हो रहा है ?"

लक्ष्मण ने आँसू पोंछ कर उत्तर दिया—"आर्य्ये ! आप घबराएं नहीं। चिरकाल के पीछे गङ्गाजी का दर्शन करने से मन में कुछ अकथनीय भाव उत्पन्न हो गये थे, इसी कारण मेरी आँखों से आँसू बह निकले। कपिल-मुनि के शाप से हमारे पूर्वपुरुष भस्मीभूत हो गये थे। महात्मा भगीरथ बड़े-बड़े कष्ट सहन करके उनके

उपकार के लिये भागीरथी को भूमि पर लाये थे। गङ्गा को अपने सामने देखकर वही बात याद आ गयी और शायद यही कारण मेरे चित्त के घबरा जाने का भी था। सीताजी बड़े सरल स्वभाव वाली सीधी सादी स्त्री थीं। लक्ष्मण की बात पर झट विश्वास कर लिया और सन्तुष्ट हो गयीं। गङ्गा के उस पार पहुँचने के लिए सीता बड़ी उत्सुक हो रही थीं और लक्ष्मण से चलने के लिये प्रेरणा कर रही थीं। आह! बेचारी सीता क्या जानती थी कि उस पार पहुँचते ही भारी शोक-सागर में फेंक दी जाऊँगी?

४

थोड़ी देर बाद नाव आ पहुँची। सुमन्त को वहीं रथ खड़ा रखने के लिये कहकर लक्ष्मण ने सीता को नाव पर चढ़ाया। शीघ्र ही नाव दूसरे किनारे जा लगी, पार पहुँच कर सीताजी ने तपोवन देखने की प्रबल इच्छा से शीघ्र ही आगे चलना चाहा। इसपर लक्ष्मण बोले—"आर्य्ये! थोड़ी देर ठहरिये, मुझे कुछ कहना है"—लक्ष्मण इतना ही कह पाये थे कि उनका सिर झुक गया और आँखें डबडबा आयीं। सीताजी चकित होकर पूछने लगीं—"लक्ष्मण! 'कुछ कहना है' कहकर ऐसे व्याकुल, बेचैन क्यों हो गये? क्या कहना है, शीघ्र कह डालो। तुम्हारे भाव को देखकर मेरा मन फटा जाता है। तुम क्या कहना चाहते हो? चलते समय क्या तुमने आर्य्यपुत्र के सम्बन्ध में कोई दुर्घटना देखी या सुनी थी? या कोई और सर्वनाश की बात है? शीघ्र बताओ कि क्या बात है।"

लक्ष्मण बोले—"देवी! क्या कहूँ, मुख से कहा नहीं जाता। मुझे कभी स्वप्न में भी इस बात का ध्यान न आया था कि आर्य्य के आज्ञापालन के मेरे भाग्य में ऐसी बात बदी होगी।

जो घटना घटने वाली है उसका ख्याल आने से ही मेरा हृदय फटा जाता है। यदि मैं इससे पहले ही मर जाता तो अच्छा होता। यदि मृत्यु से भी बढ़कर कोई बात मेरे लिये हो जाती तो और भी अच्छा होता। यदि ऐसा हो जाता तो आज आर्य्य की एक धर्म्म-विरुद्ध आज्ञा का पालन न करना पड़ता। विधाता! तूने मेरे भाग्य में क्या यही लिखा था?" यह कहकर लक्ष्मण जड़ से कटे हुए वृक्ष की तरह भूमिपर गिरपड़े और हाहाकार करने लगे।

लक्ष्मण की ऐसी दशा देखकर सीताजी कुछ सोच न सकीं, किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी खड़ी रहीं। फिर अपने अञ्चल से लक्ष्मण के आँसू पोंछे और बड़ी व्याकुल होकर कहने लगीं—"लक्ष्मण! तुम इतने व्याकुल क्यों हो रहे हो? मृत्यु को रह-रहकर स्मरण करने का कारण क्या है? मैं देख रही हूँ कि तुम बहुत घबराये हुए हो। इतना बेचैन तो मैंने तुम्हें आजतक कभी नहीं देखा था। कहो, आर्य्यपुत्र का तो कुछ अमङ्गल नहीं हुआ? तुम उनके प्राण हो, तुम्हारी ऐसी दशा देखकर मुझे सन्देह होता है कि उनके सम्बन्ध में अवश्य कोई दुर्घटना घटी है। अब मेरी समझ में आ रहा है कि मैं कल अधीर क्यों थी। जो कुछ भी हो, लक्ष्मण! मुझे शीघ्र बताओ कि बात क्या है। कहकर मेरे प्राण बचाओ, मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है। अब विलम्ब न करो। मैं समझती हूँ कि सर्वनाश समुपस्थित है। यदि ऐसा न होता तो तुम इस समय इतने व्याकुल कैसे हो सकते थे?"

सीताजी की घबराहट और बेचैनी देखकर लक्ष्मण की शोकाग्निज्वाला और भी भड़क उठी। आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। गला रुक गया और एक शब्द भी मुख से न निकल सका। अंत में तो सब कुछ कहना ही पड़ेगा, कहे बिना छुटकारा

कहाँ, यही सोचकर लक्ष्मण बार-बार बोलने की चेष्टा करते थे, पर किसी तरह भी वह भयानक बात उनके मुख से नहीं निकलने पाती थी। यह दशा देखकर सीताजी लक्ष्मण का हाथ धरकर बड़े कातर वचनों से कहने का अनुरोध करने और कहने लगीं—"प्रिय वत्स ! आर्य्यपुत्र की आज्ञा कैसी ही कठोर और कठिन क्यों न हो, शीघ्र ही कह डालो, तनिक भी संकोच वा विलम्ब न करो। बेखटके कह दो। तुम्हारा रङ्ग-ढङ्ग देखकर और तुम्हारी बातें सुन-कर मुझे स्पष्ट मालूम होता है कि मेरी प्रारब्ध फूट गयी। कोई घोर विपत्ति मेरे सिरपर आयी है। क्या हुआ है, शीघ्र कहो। अब विलम्ब न करो। मैं अब इस आशा-निराशा की दशा में एक क्षण भी और नहीं रह सकती। जो कुछ हो, कहकर मेरी जान बचाओ। मैं फिर पूछती हूँ कि आर्य्य-पुत्र का तो कुछ अनिष्ट नहीं हुआ ? यदि वह सकुशल हों, सर्वथा सानन्द हों तो मुझे कुछ दुःख न होगा, चाहे मेरा सर्वनाश ही क्यों न हो जाये। मैं तुम्हें आर्य्य-पुत्र की शपथ देती हूँ कि अब विलम्ब न करो। यदि अब ऐसा हुआ तो मुझे जीता न पाओगे। यदि मुझे तड़पा कर मारना नहीं चाहते तो अब विलम्ब न करो, सब कुछ कह डालो।"

जब सीताजी की ऐसी दशा देखी तो लक्ष्मण ने सोचा कि अब और विलम्ब करना उचित नहीं। जैसे-तैसे चित्तमें धैर्य्य धर-कर बड़ी कठिनता से लक्ष्मण बोले—"आर्य्य ! कहूँ कैसे ? कहते मेरी छाती फटती है। अकेली दुष्ट रावण के घर रहने के कारण आपके शुद्धाचारिणी होने में पुरवासियों और देशवासियों को सन्देह हो रहा है और सर्वत्र निन्दा हो रही है। उसे सुन श्री रामचन्द्र जी ने स्नेह, ममता और दया को छोड़ कर, उस दारुण

लोकापवाद से बचने के लिये आपका परित्याग किया है। मुझे उन्होंने यही आज्ञा दी है कि आपको वाल्मीकि-मुनि के आश्रममें छोड़ कर अयोध्याको लौट जाऊं। यही वह वाल्मीकि आश्रम है।"

यह कहते ही लक्ष्मण मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। सीताजी भी सह न सकीं, वायु के वेग से गिरायी हुई कदली की तरह भूमि पर आ रहीं। जब थोड़ी देर पीछे लक्ष्मण को होश आया तो उन्होंने सीताजी को होशमें लाने का बहुत प्रयत्न किया। जब वह कुछ सम्भलीं तो उन्मत्त की तरह लक्ष्मण के मुँह की ओर देखने लगीं। लक्ष्मण किंकर्त्तव्यविमूढ़, हतबुद्धि से हो, नीचे को मुंह किये खड़े आँसू बहाते रहे। थोड़ी देर बाद सीताजी की आँखों से अश्रु धारा बह निकली। लम्बे लम्बे साँस आने लगे और सारा शरीर काँपने लगा। सीताजी की यह दशा देख कर लक्ष्मण बहुत व्याकुल हुए और उन्हें सान्त्वना देने की चेष्टा करने लगे। पर, क्या कह कर समझाएँ, इस बात का निश्चय न कर सकने के कारण नष्ट-चेतना हो, स्वयं भी रोने लगे।

५

थोड़ी देर तक दोनों की यही दशा रही, फिर सीता जी स्वयं कुछ धैर्य्य धर कर बोलीं—"लक्ष्मण! दोष मेरे भाग्य का ही है। इसे छोड़ और किसे दोष दूँ? नहीं तो राजा की बेटी, राजा की पतोहू और राजा की पत्नी होकर क्या कोई मेरी तरह चिरदु:खिनी हुई है? मालूम होता है, संसार में जन्म से लेकर मृत्यु तक दु:ख ही दु:ख भोगने के लिये विधाता ने मुझे बनाया है। क्या कोई जानता था कि अन्त में मेरी यह दशा होगी? जब बहुत देर के बाद आर्य्य पुत्र से फिर मिलाप हो गया, चित्त की अभिलाषा पूरी हो ही गयी तो मैंने सोचा कि अब दु:खों का

अन्त हो गया। पर मुझे स्वप्न में भी इस बात का ध्यान न था कि मेरे भाग्य में इससे भी सौ गुना विषम दुःख भोगना लिखा हुआ है। हाय विधाता ! क्या तेरे जी में यही था ?"

यह कहते ही कहते सीताजी का गला रुँध गया। कुछ देर तक कुछ भी न बोल सकीं। फिर लम्बा साँस लेकर कहने लगीं—"वत्स लक्ष्मण ! परमात्मा जाने, पहले जन्म में मैंने कैसे भारी पाप किये होंगे, नहीं तो मुझे ऐसे-ऐसे दुःख क्यों भोगने पड़ने ? पर विधाता का भी इसमें क्या दोष है। सबको अपने-अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। मैंने जो कुछ पहले जन्म में किया होगा अब उसका फल पा रही हूँ। मैं समझती हूँ कि मैंने पहले जन्म में अवश्य ही किसी पतिप्राणा रमणी का उसके पति से वियोग कराया होगा। उसी पाप का फल है जो आज मेरी यह दीन-हीन दशा हो रही है। आर्य पुत्र का हृदय तो प्रेम और दया से भरपूर है। मुझे यह भी निश्चय है कि वह भली-भाँति जानते हैं कि मैं पतिव्रता और शुद्धाचारिणी हूँ और उन्हों ने मेरा परित्याग भी ऐसे समय में किया है जब मैं कठोरगर्भा हूँ। यह सब मेरे ही पहले जन्म के कर्मों के फल हैं। लक्ष्मण ! बनवास में मैं दुःखी नहीं हूँ। मैं आर्य्य पुत्र के साथ चिरकाल तक बन में रही हूं। मुझे उस समय तनिक भी दुःख नहीं हुआ। अब मुझे दुःख यही है कि आर्य्य पुत्र ने मुझे किस अपराध पर निकाला है। जब ऋषि-पत्नियां पूछेंगी तो मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगी ? वह सब समझती हैं कि आर्य्य पुत्र करुणामय, दया के सागर हैं। जब मैं सच्ची-सच्ची बात उनसे कहूँगी तो वह सहज ही मेरा विश्वास न करेंगी। वह अपने मन में समझेंगी कि मैंने अवश्य ही कोई घोर कुकर्म, महापाप किया होगा, जिस

कारण मैं आर्य्य पुत्र से त्यागी गयी हूँ। वत्स! क्या कहा जाय? यदि मैं गर्भवती न होती तो यहीं गंगा में अपने प्राण छोड़ देती। तुम्हीं बताओ कि मेरे इस दशा में और जीवित रहने से क्या लाभ होगा? ऐसी दशा में क्या जीना उचित है? आश्चर्य है कि अपने परित्याग की बात सुन कर भी क्यों अब तक मेरे प्राण नहीं निकले। शायद मेरे प्राण बहुत ही कठोर हैं, नहीं तो अब तक क्यों रुके रहते? या शायद विधाता ने ही मुझे चिर-दुःखिनी बनाया है। यदि मेरे प्राण निकल जाते तो उसकी इच्छा विफल हो जाती। यही कारण है कि मेरे प्राण नहीं निकले।"

इसी प्रकार शोक-विलाप करती हुई सीता जी गहरी साँस छोड़ती हुई और "हा! क्या हुआ!" कहती मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं। सीता जी का विलाप-परिताप देखकर लक्ष्मण भी मारे शोक के अति व्याकुल हो गये। रामचन्द्र जी के प्रजा-रञ्जन (जो पहले न कहीं देखा गया न सुना ही गया था) को ही इस अनर्थ का मूल समझ कर शोकातुर होकर कहने लगे—"यदि इस समय से पहले ही मेरी मृत्यु हो जाती तो मैं इस लोक और धर्म की मर्यादा के विरुद्ध विषम काण्ड देखने से तो बच जाता। मैं केवल आर्य्य की आज्ञा पालन करने के लिए घोर कर्म कर रहा हूँ। मेरे जैसा पापी और पाखण्डी इस संसार में और कौन होगा? नहीं तो ऐसे कार्य्य का भार मैं अपने सिर पर लेता ही क्यों? हाय! मैंने इस पतिपरायणा सरल-स्वभाव और शुद्ध, पवित्र आचरण वाली सीता को यह कैसा भयानक समाचार सुनाया! यदि मैं अपने बड़े भाई की आज्ञा का उल्लंघन करता, उनके मन में मेरी ओर से वैमनस्य भी क्यों न हो जाता और

फिर मुझे नरक ही क्यों न भोगना पड़ता, तो मुझे उस दशा में भी कभी उतना दुःख न होता जितना अब हो रहा है। उनकी आज्ञा मान कर मैंने बहुत बुरा काम किया। हाय ! मैं महा पाप कर बैठा ! विधाता ! तुमने ऐसे कठिन कार्य्य का भार अपने सिर लेने के लिये मेरी बुद्धि को प्रेरणा क्यों की ! मेरे वज्र के हृदय ! तू फट क्यों नहीं जाता ! मेरे कठोर प्राणो ! तुम अब निकल क्यों नहीं जाते ? हाय ! मेरी दग्ध देह ! तू अभी तक नष्ट नहीं हुई ! अब मुझ से आर्य्या जानकी की दुःखावस्था देखी नहीं जाती। आर्य्य ! मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि तुम ऐसे कठोर-हृदय हो। यदि तुम्हें यही करना था तो फिर सीता जी को ढूँढ़ निकालने के लिये इतनी चेष्टा क्यों की थी ? रावण के सीता को हर ले जाने के पश्चात् उन्मत्त और शोकातुर होकर बन में हाहाकार करते क्यों मारे-मारे फिरते थे ? यदि तुम उसी समय मुझे अपना अभीष्ट, अपने दिल की इच्छा बता देते तो हम क्यों राक्षसों के साथ घोर युद्ध करके दुःसह दुःख उठाते और कष्ट भोगते ? उस दशा में युद्ध की आवश्यकता ही क्या थी ? सैकड़ों-हज़ारों आदमियों की जानें क्यों जातीं ? तुम्हारे समान कठोर हृदय और निन्दनीय पुरुष और कौन होगा ?

६

कुछ देर तक इसी प्रकार श्रीरामचन्द्र जी के विचारों की निन्दा करके लक्ष्मण ने अपने शोक के वेग को रोका और फिर सीता जी की मूर्च्छा दूर करने का प्रयत्न करने लगे। बहुत से उपाय करने के बाद जब सीता जी को चेत हुआ तो कहने लगीं "लक्ष्मण ! धीरज धरो। अब शोक-विलाप मत करो। इस संसार में सब कुछ भाग्य चक्र में बन्धा हुआ है। सब कुछ भाग्य से ही

होता है। जो कुछ मेरे भाग्य में बदा होगा अवश्य भोगना पड़ेगा अब इन बातों के लिये शोक मत करो। मेरी याद दिल से भुला कर, मेरा ख्याल दूर करके तुम शीघ्र ही आर्य्य पुत्र के पास लौट जाओ। मुझे निश्चय है कि वह मेरे परित्याग के कारण बहुत बेचैन और शोकातुर हो रहे होंगे। तुम वहाँ जाकर कोई ऐसा उपाय करो, जिससे उनका शोक-ताप दूर हो जाये और विरह-वेदना उन्हें न सताये। उनसे कहना कि मेरे परित्याग करने का कुछ दुःख न मानें। जो कुछ हुआ है अच्छा हुआ है, बुरा नहीं। राजा का प्रधान कर्म्म, मुख्य कर्त्तव्य यही है कि प्राण पण से प्रजा-रंजन में लगा रहे। मुझे छोड़कर उन्होंने अपना धर्म्म-पालन किया है। मैं भली भाँति जानती हूं कि उनके मन में क्या है। यह सब कुछ उन्होंने प्रजा की प्रसन्नता के लिये ही किया। राजा का धर्म्म ही यही है। अब आर्य्य पुत्र को चाहिये कि शोक-ताप छोड़ कर प्रसन्नतापूर्वक राज-काज और प्रजा का पालन करें। मेरी ओर से उनके चरणारविंद में प्रणाम करके सविनय निवेदन कर देना कि यद्यपि आपने मुझे अयोध्या से निकाल दिया है, पर कहीं अपने हृदय-मन्दिर से निर्वासित न कर देना। मैं यहाँ तपोवन में अकेली रहूंगी और यही तपस्या करूँगी कि अगले जन्म में भी आप ही मेरे पति बनें और मुझे आपकी दासी बनने, आपकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हो। कर जोड़ मेरी ओर से यह भी कहना कि आपने पत्नी रूप में मेरा परित्याग किया है, पर साधारण प्रजा के तौर पर मेरा ध्यान रखियेगा। चारों ओर समुद्र की सीमा तक सारी पृथ्वी के आप ही अधीश्वर हैं, इस कारण जहाँ कहीं भी रहूंगी आप ही के अधिकार में रहूँगी, आपके अधिकार से बाहर जाना

कदापि सम्भव नहीं।"

सीताजी इतना ही कहने पायी थीं कि उनके हृदय में शोकसागर फिर उमड़ आया। थोड़ी देर तक चुप रह कर वह फिर यों कहने लगीं—"प्रिय वत्स! मैं अपने परित्याग और बनवास से दुःखी नहीं हूँ, बल्कि आर्य्यपुत्र को शोक और परिताप हो रहा होगा—इसी बात का ध्यान आने से मैं इस समय अत्यन्त व्याकुल हो रही हूँ और इसी से मेरे धैर्य्य का बाँध टूटा जा रहा है। लक्ष्मण! मेरी ओर से उनकी सेवा में विनयपूर्वक यह निवेदन करना—"आर्य्य-पुत्र! आ शोक को शीघ्र ही दूर करके निश्चिन्त हो जाइये! किसी प्रकार का मोह-शोक न कीजिये। यद्यपि मुझे बन में छोड़े जाने के कारण बड़ा कष्ट हो रहा है, पर इसके लिये मैं आप को दोष नहीं देती। जो कुछ हुआ है मेरे ही कर्मानुसार हुआ है, यह सोच कर शोक न कीजिये। लक्ष्मण! मैं तुम से बार-बार यही कहती हूँ कि तुम सदा आर्य्य पुत्र के साथ ही रहना, एक क्षण के लिये भी कभी उन्हें अकेले न छोड़ना, कभी उन से जुदा न होना। यदि वह अकेले होंगे तो विरह-वेदना और शोक उन्हें आ दबायेंगे। तुम सदा ऐसा ही उपाय करते रहना, जिससे उन्हें कोई दुःख न होने पावे, जिससे वह सदा आनन्द प्रसन्न रहें।" यह कह कर सीताजी ने लक्ष्मण का हाथ पकड़ लिया और बड़ी दीनता से बोलीं—"तुम मेरे सामने शपथ खाओ कि मैंने जो कुछ तुम से कहा है तुम उसे पूरा करोगे, उस में कोई त्रुटि न रहेगी। जब तक मुझे लोगों के मुख से आर्य पुत्र के कुशल-मंगल और उनके चित्त की प्रसन्नता का समाचार मिलता रहेगा, मैं भी आनन्द से अपने दिन विताती रहूँगी, अन्यथा नहीं।"

यह कहते ही कहते सीताजी की आँखों से फिर आँसू बह निकले। आँसुओं से उनकी छाती भीग गयी। लक्ष्मण जी को समझाने लिये सीताजी फिर बोलीं—"लक्ष्मण ! तुम अभी आर्य्य पुत्र के पास लौट जाओ, अब बिलम्ब न करो।" सीताजी बार बार लक्ष्मण से यही बात कहने लगीं ! लक्ष्मण प्रणाम करके, हाथ जोड़ सामने आ खड़े हुए और आँखों से आँसू बहाते बहाते बोले—"आर्य्ये ! आप सदा से देखती आयी हैं कि मैं आर्य्य पुत्र का परम आज्ञाकारी हूँ, उनकी जब जो आज्ञा होती है, मैं उसका तत्काल पालन करता हूँ। छोटे भाई का धर्म्म यही है कि चाहे प्राणान्त क्यों न हो जाये, पर बड़े भाई की आज्ञा का पालन करे। मैं उसी धर्म को सामने रख कर इस कठोर आज्ञा का पालन करने के लिये यहाँ पहुंचा हूं। मैंने छाती पर पत्थर रख कर जो कार्य अपने सिर लिया था, वह अब पूरा हो गया है। अब मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि जो वात्सल्य और कृपा अब तक आपकी मुझ पर रही है; वही आगे भी बनी रहे। कृपा-दृष्टि में कोई भेद न आये। मैंने बड़े भाई की आज्ञा पालन करने में आपके प्रति जो अपराध किया है, कृपा करके उसके लिये मुझे क्षमा करना।

लक्ष्मण को शोकातुर देख कर सीता जी ने कहा—"लक्ष्मण ! तुम्हारा क्या अपराध है ? तुम इतने दुःखी होकर परिताप क्यों कर रहे हो ? तुम से अप्रसन्न या असन्तुष्ट होना तो एक ओर रहा, मैं तो नित्य यही प्रार्थना किया करती हूँ कि अगले जन्म में भी मुझे तुम-सा ही गुणी और सुशील देवर मिले। परमात्मा करे तुम चिरकाल तक जीओ। अयोध्या पहुँच कर श्रीआर्य्यपुत्र के चरणारविन्द में मेरा प्रणाम कहना। भरत,

शत्रुघ्न और मेरी बहनों को भी मेरी ओर से प्रीति के वचन कहना। जब देवियां (घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ, सास इत्यादि) भगवान ऋष्यश्रृङ्ग के यज्ञ की समाप्ति पर घर पहुँचें तो उनके चरणों में मेरा साष्टाङ्ग प्रणाम निवेदन करना। लक्ष्मण ! मैं तुम से एक और बात कहना चाहती हूँ। विधाता ने मेरे प्रारब्ध में सुख भोगना नहीं लिखा। मैं चिरदु:खिनी हूँ। इसी लिये मेरा यह सर्वनाश हुआ और मैं इस प्रकार बन में अकेली छोड़ी गयी, पर इस के लिये मुझे इतना दु:ख नहीं। तुम ऐसा उपाय करना जिस से मेरी बहनें दु:खी न हों। मेरे विरह में उन्हें बहुत दु:ख हो रहा होगा। तुम तीनों भाई उन का दु:ख शीघ्र दूर करने का यत्न करना। उन के सुखी होने से मैं भी सुखी होऊँगी। तुम उन से कहना कि मैं अपने किये का फल पा रही हूँ। मेरे लिये वृथा शोक मत करो। यह कर सीता ने लक्ष्मण को जाने को कहा। लक्ष्मण आँखों में आँसू भर लाये और हाथ जोड़ कर गद्गद स्वर से फिर कहा कि 'आर्य्ये ! मेरा अपराध क्षमा करना।' लक्ष्मण नावपर बैठ चल दिये।

७

जाते हुए लक्ष्मण की ओर सीता टकटकी बाँधे देखते रहीं। नाव जल्दी ही दूसरे किनारे जा पहुँची। नाव से उतर कर लक्ष्मण ने फिर सीता की ओर देखा और आँसू बहाते रथ में सवार हो गये। रथ चल दिया। जब तक सीता जी दिखाई देती रहीं लक्ष्मण उन्हीं की ओर देखते रहे। सीता जी भी स्थिर दृष्टि से रथ को ही देख रही थीं। जब रथ दूर निकल आया और सीता दिखाई देनी बन्द हो गयीं तो लक्ष्मण सिर पीट कर हाहाकार करने लगे। सीता जी को भी जब रथ नज़र आने से रह गया तो

वह भी ऊँचे स्वर से रोने और विलाप करने लगीं।

सीता जी के रोने चिल्लाने का शब्द निकटवर्त्ती ऋषि-कुमारों ने सुना और वह वहाँ आये। आकर देखते हैं कि एक महारानी हाहाकार कर रही है। उसको इस प्रकार विलाप करते देख कर देखने वालों के दिल भर आये। उन में कुछ पुरुष वाल्मीकि जी के पास दौड़े गये और सारा वृत्तान्त उन्हें जा सुनाया—"भगवान! हम फल-फूल चुनने और कुशा और समिधा इकट्ठी करने के लिये गङ्गा जी के किनारे बन में गये थे। हमें वहाँ अकस्मात् एक स्त्री के रोने का शब्द सुनायी दिया। इधर-उधर खोजने पर देखा कि एक स्त्री रो रही है और विलाप कर रही है। वह परम सुन्दरी है, उसका रूप अलौकिक है। अपने वस्त्राभूषणों से कोई महारानी मालूम होती है। वह अनाथ की तरह रो-रो कर विलाप कर रही है। अपने सौन्दर्य्य से साक्षात् लक्ष्मी दिखाई देती है। वह कौन है, वह कहां से आयी है और क्यों अकेली पड़ी इस प्रकार विलाप कर रही है, सोचने पर भी कुछ हमारी समझ में नहीं आया। उसके करुणा-भरे विलाप को सुन कर हमारा हृदय विदीर्ण हुआ जाता था। उसे इतना शोक-विह्वल देख कर हमें उससे कुछ पूछने का भी साहस नहीं हुआ। अन्त में सोच कर हमने यही उचित समझा कि सारा समाचार आपकी सेवा में निवेदन कर दें। अब आप जो उचित समझें करें।"

८

ऋषि-कुमारों से यह समाचार सुन कर महर्षि वाल्मीकि उठ खड़े हुए और भागीरथी के किनारे जा पहुँचे। सीता जी के सामने खड़े हो कर बड़ी शान्ति से गम्भीर स्वर में कहने लगे—

"बेटी ! विलाप बन्द करो। तुम्हारे तपोवन में आने का कारण हमें पहले ही मालूम हो चुका है । तुम मिथिला—नरेश राजर्षि जनक की बेटी, कोशलाधिपति महाराजा दशरथ की बहू और महाराजधिराज श्रीरामचन्द्र जी की धर्म्मपत्नी हो । तुम्हारे स्वामी ने निर्मूल लोकापवाद को सुन कर, अस्थिर-चित्तता से, भले-बुरे का कुछ भी ख्याल न करके, तुम्हे बिना किसी अपराध के ही निकाल दिया है ।"

महर्षि के समझाने-बुझाने पर सीताजी ने आँसू पोंछ डाले और अपने कन्धे पर पड़े हुए कपड़े से उनके चरण छुए। महर्षि ने आशीर्वाद दिया कि कुल-भूषण पुत्र पैदा हो और कहा— "बेटी ! अब उठकर हमारे आश्रम को चलो, मैं तुम्हें पुत्री की तरह रक्खूँगा और पालन-पोषण करूँगा । वहाँ तुम्हें कोई कष्ट-क्लेश न होगा । पुर, नगर में रहने वाले बन का नाम सुन कर डर जाया करते हैं, पर यहाँ किसी प्रकार का भय नहीं है। हिंसक पशु तक भी हमारे तप के प्रभाव से अपने हिंसा के स्वाभाविक गुण को भूल जाते हैं और परस्पर बड़े प्रेम से रहते हैं। यहाँ कोई किसी को कष्ट नहीं देता। तपोवन की महिमा ही ऐसी है कि यहाँ थोड़ी देर रहने से भी मनुष्य को बहुत आनन्द मिलता है। मैं जानता हूँ कि तुम गर्भवती हो और तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होने वाला है। यहाँ पर संस्कार भी विधिपूर्वक किये जा सकेंगे । तुम्हारी अवस्था की यहाँ कई मुनि-कन्याएँ हैं । उनके साथ रहने से तुम्हें बड़ा आनन्द होगा और तुम्हारा जी भी बहल जायेगा। हम तुम्हारे पिता के बड़े मित्र हैं, इस लिये तुम्हें हमारे आश्रम में भी वैसा ही सुख मिलेगा जैसा पिता के घर मिलता। हम पुत्रीवत् तुम्हारा पालन-पोषण करेंगे । तुम्हें किसी प्रकार

का कष्ट न होने पायेगा। इस लिये बेटी! अब विलम्ब न करो, उठकर हमारे साथ चलो।"

इसके बाद महर्षि वाल्मीकि सीता जी को साथ लेकर तपोबन में चले गये और वहाँ पहुँच कर सब को सीता जी के आने का समाचार कह सुनाया। समवयस्का मुनि-कन्याएँ सीता जी की देख-भाल के लिये नियत की गयीं। उन्हें भी सीता जी से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई और वह सब ऐसे उपाय करने लगीं जिससे सीता जी की विरह-व्यथा शीघ्र जाती रहे।

पाँचवाँ काण्ड

लव-कुश-जन्म

सीता जी को वाल्मीकि के आश्रम में भेज देने के बाद रामचन्द्र जी बड़े अधीर और शोक-विह्वल हो गये। विरह-वेदना के कारण खाना-पीना, राज-काज की देखभाल सब ही छूट गये। यहाँ तक नौबत पहुँची कि लोगों से मिलना-जुलना तक भी बन्द हो गया। एकान्त में रहने लग गये। जहाँ वह रहते थे वहाँ किसी को भी आने-जाने की आज्ञा न थी। उन्हें विश्वास था कि सीता जी का आचरण शुद्ध और पवित्र है और वह उन्हें जी-जान से प्यार करते थे। उनके दो शरीर और एक प्राण (दो क़ालिब एक जान) थे। दोनों का स्वभाव भी एक-सा ही था। जैसे सीता जी का स्वभाव बड़ा सरल और शीलवाला था, उसी प्रकार रामचन्द्र जी का भी था। जिस प्रकार सीता जी पतिव्रता पतिपरायणा थीं और पति के सुख में सुख और दुःख में दुःख समझती थीं उसी प्रकार रामचन्द्र जी भी सीता के हिताहित में अपना हिताहित

मानते थे। नित्य उनका शुभचिन्तन करते थे। अयोध्या में राज्य-भोग करते हुए रामचन्द्र जी जितने आनन्द से रहते थे, सीता जी के साथ बन में रहते हुए भी उससे कुछ कम प्रसन्न न रहते थे। कारण यह था कि बन में भी पति-पत्नी एकत्र थे। बनवास की अवधि समान होने पर जब वह घर में रहते थे, उन में परस्पर स्नेह बहुत बढ़ गया था। दोनों ही एक दूसरे को एक क्षण के लिये भी अपनी आँखों से ओझल न होने देते थे। रामचन्द्र जी ने केवल अपनी प्रजा को सर्वथा प्रसन्न रखने के लिये, उसके अनुरञ्जन के लिए अपनी छाती पर पत्थर रख कर सीता जी को बनवास दिया था। यही कारण था कि सीता-परित्याग के बाद उनका चित्त बेचैन और शोक-विह्वल हो गया था। सीता जी के परित्याग से रामचन्द्र जी के मानसिक कष्ट का कुछ ठिकाना न रहा। उनके दुःख का पारावार न था, वह अनेक प्रकार से शोक और विलाप करते और परिताप करते-करते कहते—"हा! मैंने राजवंश में जन्म क्यों लिया? बनवास से लौट कर यहां क्यों आया? यदि आया भी तो राज-काज का बोझ क्यों फिर अपने सिर ले लिया? प्रजा के कष्ट, प्रजा की सम्मति जानने के लिये दुर्मुख को क्यों नियुक्त किया? लक्ष्मण का उपदेश क्यों न माना? ऐसी निष्ठुरता से सीता को क्यों छोड़ दिया? मैं राज्य को छोड़ कर सीता के साथ ही बन को क्यों न चला गया? अब अपने मन को किस प्रकार समझाऊँ? किस लिये जीऊँ? सीता का परित्याग करने से तो यह अच्छा था कि मैं आत्मघात कर लेता। ऐसी-ऐसी बातें कह कर रामचन्द्र जी विलाप करते रहते। शोकाग्नि के भड़क उठने से रामचन्द्र जी का फूल सा शरीर सूख कर काँटा सा हो गया।

सीता जी को छोड़ने के बाद लक्ष्मण तीसरे दिन दोपहर के समय अयोध्या में पहुँचे। वह सबसे पहले रामचन्द्र जी के पास गए और उनके सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। उनकी आँखों में आँसू उतर आये और रुँधे हुए गले से बोले—"आर्य्य! पापात्मा लक्ष्मण आपकी आज्ञा का पालन कर आया। यह सुनते ही रामचन्द्र जी 'हा सीते! हा प्रिये।' कहते मूर्च्छित होकर नीचे गिर पड़े। लक्ष्मण स्वयं भी शोकविह्वल हो रहे थे, पर फिर भी रामचन्द्र जी की मूर्च्छा को दूर करने का उपाय करने लगे। होश आने पर रामचन्द्र जी थोड़ी देर तक लक्ष्मण के मुँह की ओर देखते रहे, फिर हाहाकार करके और लम्बा साँस लेकर बोले—"प्यारे लक्ष्मण! तुम जानकी को कहाँ छोड़ आये? उसके बिना मैं किस तरह जाऊँ? मैं यह व्यथा सह नहीं सकता।" यह कह कर लक्ष्मण से लिपट गये और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। जब कुछ शान्ति आई तो लक्ष्मण के मुख से सीता के परित्याग का सब वृत्तांत सुना और इतने रोये कि उनकी छाती भीग गयी। शोक के कारण गला रुँध गया, बोलने तक की शक्ति जाती रही। शोक-सागर फिर उमड़ पड़ा। रामचन्द्र जी के लिये उसका वेग असह्य हो उठा और वह फिर अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े।

लक्ष्मण उन्हें फिर होश में लाये और सोचने लगे कि आर्य को जितना दुःख इस समय हो रहा है उतना पहले कभी नहीं हुआ। इनके शोक को दूर करने के लिये मुझे इस समय कोई उपाय नहीं सूझता। पर जो हो, उन्हें समझाने, सान्त्वना देने की चेष्टा अवश्य करनी चाहिये। मन में यह विचार कर लक्ष्मण बड़ी

नम्रता से मृदु वचन बोले—"आर्य ! आप ऐसे महापुरुष को शोक और मोह के कारण इतना अधीर और कातर होना शोभा नहीं देता। यह आप के लिये उचित नहीं। आप बड़े ज्ञानी हैं और सब कुछ जानने वाले हैं। जो कुछ होना था, होकर रहना था, वह हो गया। टल नहीं सकता था। नहीं तो कौन विश्वास कर सकता था कि आप सीता जी को छोड़ देंगे? यदि आप सोचकर देखेंगे तो आप को पता लगेगा कि संसार में कोई भी सदा नहीं रहता। इस असार संसार में सभी कुछ अस्थिर है। बड़ी भारी अस्थिरता है, कोई वस्तु चिरकाल तक नहीं ठहरने पाती। वृद्धि में क्षय, उन्नति में अवनति, यौवन में जरा, जीवन में मरण और संयोग में ही वियोग छिपे रहते हैं। संसार में आदि से ही इसी प्रकार होता चला आया है। संसार का नियम अटल है, कभी कुछ भी इधर-उधर नहीं होता। आप यह सब कुछ सोच-विचार कर शोक को दूर कीजिये। आप ने तो लोक के हित के लिये ही शासनभार ग्रहण किया है। आप को शोक से इतना बेचैन होना शोभा नहीं देता। मैं भलीभांति जानता हूँ कि प्रिय-वियोग और अप्रिय-संयोग से शोक हुआ ही करता है। पर आप जैसे महापुरुषों को तो कभी शोकातुर नहीं होना चाहिये। साधारण, मूर्ख मनुष्य शोक से घबरा जाया करते हैं, पर विचारशील और धीर पुरुषों पर इस का वैसा प्रभाव नहीं पड़ा करता। आप बड़े बुद्धिमान और धीर हैं, इसलिये अब आप को चाहिये कि शोक-ताप दूर करके राजकाज में दिल लगावें। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि प्रजा-रञ्जन केलिये ही आप ने सीता का परित्याग किया है, देवी को घर में रखने से प्रजा अप्रसन्न होगी—इसी शङ्का से आप ने उसे तपोवन में

भेज दिया। अब शोक करना ठीक नहीं। यदि आप सीता को छोड़ देने पर भी शोक और विलाप करते रहेंगे तो प्रजा को शङ्का बनी रहेंगी और जिस दोष को दूर करने के लिये आप ने यह घोर काम किया, वह दोष बना ही रहेगा। उस दशा में सीता जी के परित्याग का कुछ भी लाभ, फल न होगा। आप को सोचने से पता चलेगा कि आप जितने दिन शोक-सागर में डूबे रहेंगे, राजकाज सब बन्द हो जायेंगे, कारबार अच्छी तरह नहीं चलेगा। प्रजा के कार्यों का भली भाँति निरीक्षण न किया जायेगा तो राजधर्म्म का कैसे पालन हो सकेगा ? इसलिये सोच-विचार करने से यही उचित प्रतीत होता है कि अब आप धैर्य धरें और सब शोक ताप छोड़ दें। जो कुछ हो चुका या बीत गया उस के विषय में अधिक सोचना, शोक करना व्यर्थ ही है।"

लक्ष्मण की बातें सुन कर रामचन्द्र जी थोड़े देर चुप रहे और फिर कहने लगे—"लक्ष्मण! तुम्हारे उपदेश और नीति तत्वभरी बातों को सुनकर मुझे बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है। तुम ठीक कहते हो। मैं सीता का परित्याग करके जो कुत्सित और अन्याययुक्त कर्म कर चुका हूँ अब उसके लिये वृथा शोक करने से क्या लाभ ? जिस कारण मैंने यह काम किया है शोक करने से वह अभिप्राय सिद्ध न होगा। सब कुछ किया कराया मिट्टी में मिल जायेगा। सब से बढ़ कर शोक का धर्म ही यह है कि जितना शोक किया जाये उतना ही बढ़ता है। शोक से घिरे हुए पुरुष को अभीष्ट लाभ नहीं होता और उसे कर्त्तव्य-पथ का ज्ञान भी नहीं रहता, जिस से उसका दुराचार कर बैठना भी कुछ असम्भव नहीं रहता। इसलिये अब मैं शोक को दूर करने का प्रयत्न करूँगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब से पीछे मैं शोका-

कुल नहीं होऊँगा। मुझे अब कोई भी कातर और विह्वल नहीं देखेगा। मन्त्रियों को सूचना भेज दो कि मैं कल से नियमपूर्वक राज्य-कार्यों का निरीक्षण करूँगा। कर्मचारियों को आज्ञा दो कि वह सब लोग कल यथा समय अपने-अपने नियत कार्य करें।"

यह कह कर रामचन्द्र ने मुँह नीचे को झुका लिया। थोड़ी देर तक चुप रहे, फिर आँखों में आँसू भर लाये और बोले—"हाय! राजा होना भी कुछ कम दुःख और विपत्ति का स्थान नहीं है। लोग किस प्रकार सुख भोगने के लिये राज्य-धिकार पाने की इच्छा किया करते हैं, मेरी कुछ समझ में नहीं आता। राज्य-भार ग्रहण करते ही मैं अपने जीवन भर का सुख, सारे जन्म का आनन्द खो बैठा। निठुर होकर मैंने निरपराधिनी सरला सीता को वनवास दे दिया। अब उस के लिये शोक करना या आँसू बहाना तक भी ठीक मालूम नहीं होता। राज्य-प्राप्ति का मुझे यही फल मिला है कि मेरा हृदय स्नेह, दया, महत्व और मनुष्यत्व तक से शून्य हो गया है। आगे के लोग यही समझा करेंगे कि मैं पापी या राक्षस था या एक तुच्छ पदार्थ जीव था। सब लोग कहा करेंगे कि दया मुझे छूतक न गयी थी।"

यह कह कर रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को विदा कर दिया। अगले दिन प्रतिज्ञानुसार वह कार्यालय में गये और राजकाज की देख भाल करने लगे। यद्यपि वह कार्य करने लग गये और प्रजा ने भी समझ लिया कि रामचन्द्र जी कोई साधारण व्यक्ति नहीं वरन् बड़े धीर महापुरुष हैं, जिन्हों ने ऐसे भारी शोक को इतनी जल्दी दबा लिया। पर वास्तव में उनके हृदय में सीता से वियोग होने के कारण दुःख और शोक का कोई पारावार न था। वह शोकाग्नि से निरन्तर जला करते थे। निरापराधिनी,

शुद्धाचारिणी सीता को मैंने बनवास दे दिया है—यह सोच कर उनके मन में जो शोक और लोभ पैदा होता था वह विष में बुझे हुए बाणकी तरह उन्हें निरन्तर कष्ट देने लगा। केवल प्रजा-रंजन के लिये ही सीता का परित्याग किया है, यह सोच कर प्यारी प्रजा के असन्तुष्ट हो जाने के भय से अपनी मानसिक व्यथा को अन्दर-ही-अन्दर छिपाने की चेष्टा करते रहते थे। जब राजसिंहासन पर बैठते और मूर्त्तिमान धर्म्म की तरह राजकाज करने में मग्न हो जाते थे, उस समय उन के धैर्य्य को देख कर सारी प्रजा यही कहा करती थी कि शायद रामचन्द्र जी जैसा धीर पुरष संसार में और कोई नहीं है। पर राज्यकार्य समाप्त करके अपने मन्दिर को लौटते तो बड़े शोकाकुल हो जाया करते थे। लक्ष्मण सदा छाया की तरह उन के साथ ही रहते थे, इस लिये प्राय: समझाया करते थे। पर लक्ष्मण के समझाने से उन का शोक दूर नहीं होता था, उलटा और बढ़ जाता था। रामचन्द्र जी अपना सारा समय शोक-विलाप करने, आँसू बहाने, अपनी निन्दा और सीता जी के गुणों का बखान करने में ही बिताया करते थे। सीता जी से जुदा हो जाने के कष्ट के कारण राम-चन्द्र जी का शरीर दिन-प्रतिदिन मलिन और कृश होता गया, उन्हें किसी काम में उत्साह न रहा। प्रजापालन और लोक-रञ्जन के कार्यों को छोड़ कर और किसी भी काम में उनका दिल न लगता था। सब बातों से जी उचाट हो गया।

३

सीता जी के इसी समय जोड़े पुत्र पैदा हुए। महर्षि वाल्मीकि जी ने विधि-पूवक उनके जात-कर्मादि संस्कार किये और बड़े का नाम कुश और छोटे का नाम लव रक्खा। सीता जी

के सन्तान हुई है, यह शुभ समाचार पाकर मुनि-कन्याएँ बड़ी प्रसन्न हुईं। सारे आश्रम में मारे आनन्द के कोलाहल मच गया। दुःसह प्रसव-वेदना के कारण पहले तो सीता जी को मूर्च्छा आ गयी। जब थोड़ी देर बाद होश आया तो ऋषि-कन्याएँ सीता जी से कहने लगीं—"सीता! आज बड़े ही आनन्द का दिन है। ईश्वर की अपार कृपा से आज तुम्हारे दो बड़े सुन्दर पुत्र पैदा हुए हैं।" जब सीता जी ने यह बात सुनी तो वह भी बड़ी प्रसन्न हुईं पर तत्क्षण ही शोक-सागर में ऐसी डूबीं कि आँखों से आँसू बहने लगे। यह देखकर मुनि-कन्याएँ उन से पूछने लगीं—"जानकी! यह तो बड़े आनन्द मनाने का समय है। तुम शोक क्यों कर रही हो?"

सीता जी का गला रुँध गया। थोड़ी देर तक एक शब्द भी मुँह से न निकला। फिर बड़ी कठिनता से शोक के वेग को रोक कर बोलीं—"प्यारी बहनो! क्या तुम्हें मेरे शोक का कारण मालूम नहीं है जो इस प्रकार अनजान बनकर पूछ रही हो? यह मुझ से छिपा नहीं है कि पुत्र-जन्म से बढ़कर स्त्रियों के लिये संसार में और कोई आनन्द नहीं है। परन्तु मेरे तो आपत्काल में पुत्र उत्पन्न हुए हैं। भला ऐसे दुःख के समय में पुत्र-जन्म का आनन्द कैसे मनाऊँ? हा! मेरा सारा आनन्द, सब सुख मिट्टी में मिल गया। जब लक्ष्मण ने मुझे परित्याग का अशुभ समाचार सुनाया था, यदि उस समय यह अभागे मेरे गर्भ में न होते तो मैं उसी समय भागीरथी में डूब जाती या और किसी तरह आत्म-हत्या करके इस असह्य कष्ट; प्राणभेदी दुःख से सदा के लिये छुटकारा पा लेती। अब मैं संसार में किस तरह अपना मुँह दिखाऊँगी? कैसे जीवन धारण करूँगी?" यह कहते-कहते सीता जी शोक से

व्याकुल हो उठीं और उनकी आँखें फिर अश्रु-धारा बहाने लगीं। इस प्रकार उनका विलाप सुनने से मुनि-कन्याओं की भी छाती फटी जाती थी। उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वह बड़े प्रीति भरे वचनों से कहने लगीं—"प्यारी सखी सीता! अब शोक दूर करो। तुम जो कुछ कह रही हो सर्वथा ठीक है, पर तुम्हारी यह दशा भी चिरकाल तक नहीं रहेगी। राजा रामचन्द्र को बुद्धि-भ्रम हो गया होगा, जिससे हिताहित, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार किये बिना ही तुम्हारे प्रति ऐसा कुत्सित काम किया गया। आज तक हम ने किसी को भी ऐसा काम करते नहीं देखा और न सुना ही है। हम ने अपने पिता जी से सुना है कि रामचन्द्र जी तुम्हें फिर शीघ्र ही ग्रहण कर लेंगे। अतः अब शोक-ताप को दूर करो।" मुनि-कन्याओं के इस प्रकार समझाने पर सीता जी की आँखों में और भी आँसू उमड़ आये। यह दर्दभरा दृश्य देखकर मुनि-कन्याओं के सुकोमल हृदय फट से गये। उस समय वह भी रोने लग गयीं।

इधर यह बातें हो रही थीं कि नव-जात कुमार रोने लग गये। स्नेह और मोह की शक्ति भी कैसी असीम और अद्भुत है। बच्चों का रोना सुनते ही सीता जी अपने शोक को भूल गयीं और उन्हें चुप करने के लिये झट बड़े प्रेम से दूध पिलाने लगीं।

४

दोनों कुमार शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान दिन-दिन बढ़ने और अपनी माता के मन और नेत्रों को आनन्द देने लगे। अपने पुत्रों को देख कर सीता जी के आनन्द का ठिकाना न रहता। जब सीता जी उनकी तोतली जबान से अस्पष्ट शब्द

और 'माँ' 'माँ' सुनतीं, जब उन्हें गोद में लेकर प्यार से उनके मुखों को चूमतीं, तो वह सब शोक को भूल जातीं। उनका सारा शरीर आनन्द से पुलकित हो उठता और दोनों नेत्रों में प्रेमाश्रु उतर आते।

जब होते-होते कुश और लव पाँच वर्ष के हो गये तो वाल्मीकि जी ने उन्हें पढ़ने बिठाया।

दोनों कुमार बड़े ही बुद्धिमान थे। थोड़े ही काल के अभ्यास से अपनी असाधारण बुद्धि और स्मरण-शक्ति की सहायता से विविध विद्याओं के अच्छे विद्वान हो गये। इससे पहले ही वाल्मीकि जी ने रामचन्द्र जी के जीवन चरित्र के आधार पर 'रामायण' नाम से एक बहुत ही अद्भुत और विस्तृत काव्य रच रक्खा था। अपना वह काव्य उन्होंने सबसे पहले रामचन्द्र जी के पुत्रों को ही पढ़ाया। कुमारों ने थोड़े ही दिनों में वह सारा काव्य कण्ठस्थ कर लिया और माता को सुना-सुना कर उनका शोक दूर करने लगे। जब ग्यारह वर्ष की अवस्था हुई तो महर्षि ने उनका यज्ञोपवीत-संस्कार कराया और उसके बाद वेदाध्ययन आरम्भ कर दिया। एक ही वर्ष में कुमारों ने वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

होते-होते लव और कुश बारह वर्ष के हो गये पर उन्हें अब तक भी इस बात का पता नहीं लगा कि हमारे पिता कौन हैं। वह अपने को ऋषि-कुमार और अपनी माता को ऋषि-पत्नी समझते रहे। बात यह है कि आश्रम में वास करते समय सीता जी का आचरण ही इस प्रकार का था कि उन्हें सब कोई ऋषि पत्नि समझते थे। और यही हाल बच्चों का भी था। उनके भी आचार, विचार, व्यवहार सब ऐसे थे कि उन्हें देखकर कोई भी

यह नहीं कह सकता था कि वह ऋषि-कुमार नहीं है। इसलिए जो कोई उन्हें देखता, ऋषि-कुमार समझ लेता। इन बालकों को इतना ही मालूम था कि सीता जी हमारी माता हैं, पर वह यह नहीं जानते थे कि वह कोशलाधीश राजा रामचन्द्र जी की धर्म-पत्नी और मिथिला-नरेश राजर्षि जनक जी की पुत्री हैं। कारण यह था कि महर्षि वाल्मीकि ने उनसे यह सब बातें छिपा रक्खी थीं। अन्य आश्रम वासियों से भी यह ताकीद कर दी थी कि भूल कर भी यह भेद इनको न बताया जाये। इस लिये सीताजी भी अपने परित्याग की कथा उनके सामने न छेड़ती थीं। 'रामायण' में तो उन्होंने 'रामचन्द्र जी' और 'सीताजी' के विषय में बहुत कुछ पढ़ रखा था, पर उन बेचारों को यह मालूम न था कि हमारी माता सीता ही रामचन्द्रकी की धर्म-पत्नी सीताजी हैं। इस लिये रामायण में सब कुछ पढ़ लेने पर भी वह उन्हें पहचान न सके।

५

सीता ने दोनों बच्चों का बड़ी सावधानता से और खूब दिल लगा कर पालन-पोषण किया। जब शैशवकाल निकल गया तो सीताजी को उनके लालन-पालन की विशेष चिन्ता न रही और उनकी ओर से निश्चिन्त रहने लगीं। उन्हें भी माता की कुछ परवाह न रही और स्वतन्त्रता से रहने लगे। अब सीताजी का बहुत-सा समय ऋषि-पत्नियों की तरह तपस्या में ही बीतने लगा। रामचन्द्रजी की हितकामना उनकी तपस्या का एक मात्र उद्देश था। यद्यपि श्री रामचन्द्रजी ने उन्हें निरपराधिनी ही निर्वासित कर दिया था, पर सीताजी के मन में फिर भी एक क्षण के लिये अपने पति की ओर से बुराई नहीं आयी, बुरी

भावना नहीं उठी। अभी भूल कर भी अपने मन में पति को दोषी नहीं ठहराया। जैसा स्नेह अयोध्या में था वैसा ही अब भी बना रहा, ज़रा भी परिवर्त्तन न हुआ। सीताजी समझती थीं कि मेरे ही प्रारब्ध का दोष है और किसी का नहीं। सीताजी की जो अनन्त भक्ति, अटल श्रद्धा और अथाह प्रेम श्री रामचन्द्रजी में पहले था वैसा ही अब भी रहा। नित्य अपने पति के हित-मङ्गल के लिये देवताओं से प्रार्थना किया करतीं यहाँ तक कि अगले जन्म में भी उन्हीं की दासी बनना चाहती थीं। तपस्या करने में अथवा ऋषि-कन्याओं और मुनिपत्नियों के साथ वार्तालाप करने में दिन तो जैसे-तैसे कट ही जाता था, पर पहाड़-सी रात, अकेले होने के कारण, काटे नहीं कटती। रात भर श्री रामचन्द्रजी को स्मरण करने, उनका ध्यान करने और रोने-धोने में लगी रहतीं। कौन समझ सकता है कि जब सीता ऐसी पति-प्राणा थीं तो उनकी विरह-व्यथा कम हो गयी होगी? संसार में सब का शोक, चाहे कितना ही दु:सह और तीव्र क्यों न हो, समय पाकर स्वयं घट जाता है। और यदि बिलकुल न जाता रहे तो कम-से कम उसका वेग उतना प्रबल नहीं रहता, हलका पड़ ही जाता है। पर, सीता जी का शोक ऐसा था कि घटने का नाम ही न जानता था, दिन-दिन बढ़ता ही जाता था। बारह वर्ष तक सीताजी की की यही दशा रही और उनका सौन्दर्य्य, सारी शोभा, सारी कान्ति सब आँसुओं के साथ बह गयी। उस पहले रूप का कुछ भी शेष न रहा। सीताजी का फूल सा शरीर सूख कर काँटा सा रह गया।

——:o:——

छठा कांड

रामाश्वमेध-यज्ञ

एक बार राजा रामचन्द्र जी ने अश्वमेध यज्ञ करने का संकल्प किया और अपना यह संकल्प उन्होंने वशिष्ठ, जाबालि, काश्यप, वामदेव आदि ऋषियों पर भी प्रकट कर दिया। अश्वमेध-यज्ञ की बात सुनते ही वशिष्ठ बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"महाराज ! आप का यह विचार बहुत अच्छा है। आप सागर तक सारी पृथ्वी के अधीश्वर हैं। अखण्ड भूमण्डल पर आप ने ऐसा अधिकार जमाया है, जैसा पहले किसी राजा ने नहीं जमाया। आप के राज्य में प्रजा बड़े सुख-आनन्द से दिन व्यतीत कर रही है। हम ने पहले कभी नहीं देखा कि प्रजा इतनी सुखी और स्वतन्त्र हुई हो। राजा के जो जो कर्त्तव्य हैं, आप ने राज्य-भार सिर पर लेने के बाद सब कर दिये हैं। केवल एक अश्वमेध-यज्ञ ही शेष था, सो अब उस के हो जाने से वह कमी भी पूरी हो जायगी। फिर कोई कर्त्तव्य बाक़ी न रहेगा। मैं भी कुछ दिनों से यह सोच रहा था कि यज्ञ करने के लिये आप से कहूँ, पर अब आप ने स्वयं ही अपनी इच्छा प्रकट कर दी। यह अत्यन्त हर्ष की बात है। अब इस कार्य्य के करने में विलम्ब करना उचित नहीं है। शीघ्र ही इस सदनुष्ठान के लिये उचित तय्यारी का प्रबन्ध करना चाहिये।

लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भी पास ही बैठे थे। जब वशिष्ठ जी बोल चुके तो रामचन्द्र जी उन से यों कहने लगे—"प्यारे भाइयो ! जो कुछ गुरु जी ने कहा है वह सब तुम ने सुन ही लिया होगा। तुम्हें भी अब अपनी सम्मति प्रकट करनी

चाहिये। यदि इस विषय में तुम्हारी सम्मति हुई तो शीघ्र ही यह
कार्य आरम्भ किया जाएगा। तीनों भाई रामचन्द्र जी की आज्ञा में थे। सुनते ही बोल उठे कि हाँ, यज्ञ अवश्य होना चाहिये। भाइयों की अनुकूल सम्मति पाकर रामचन्द्र जी वशिष्ठ जी से कहने लगे—"भगवन्! जब आप सब मेरे प्रस्ताव को प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर रहे हैं, तो मुझे यह कार्य शीघ्र ही कर डालना चाहिये। नैमिषारण्य परमपवित्र स्थान है और यज्ञ कार्य के लिये सर्वथा ठीक भी है। मैं चाहता हूँ कि वहीं इस शुभ कर्म का अनुष्ठान किया जाये। इस विषय में आप की क्या आज्ञा है?" वशिष्ठ जी ने उत्तर दिया कि हाँ, मैं भी नैमिषारण्य को ही ठीक समझता हूँ।

फिर रामचन्द्र जी छोटे भाइयों से कहने लगे—"अब समय वृथा खोना ठीक नहीं है, शीघ्र ही यज्ञ की तय्यारी करनी चाहिये। सब राजाओं को निमन्त्रण भेज दिया जाये। समय नियत करके नगर और देश के रहने वालों को भी इस समाचार की सूचना दे दी जाय। लङ्का-युद्ध में जिन लोगों ने हमारी सहायता की थी, उन्हें भी बड़े आदर से बुलाना चाहिये। वह हमारे परम मित्र हैं। उन्होंने युद्ध में हमारे लिये बड़े-बड़े कष्ट उठाये थे। उन के आने से मैं अत्यंत प्रसन्न हूँगा। सब ऋषियों को भी बुलाना होगा। उन के आने से मैं अपने को बड़ा ही धन्य मानूँगा। भरत! तुम शीघ्र ही नैमिषारण्य में जाकर यज्ञ-भूमि बनाओ। लक्ष्मण! तुम यज्ञ में काम आने वाली सब सामग्री तय्यार करो और फिर शीघ्र ही नैमिष क्षेत्र में पहुँचा दो। आशा है कि एक बड़ा जनसमुदाय यज्ञोत्सव देखने के लिये पहुँचेगा। इस लिये जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ती नज़र आये

वह सब पहले ही से वहाँ जुटा रखनी चाहिये, जिससे वहाँ किसी प्रकार की असुविधा या कष्ट न हो। तुम स्वयं ही सब कुछ भली-भाँति जानते हो, इसलिये तुम से इस विषय में और कुछ कहना-सुनना वृथा है।"

२

जब रामचन्द्र जी चुप हो गये तो वशिष्ठ जी बोले—"महाराज ! और तो सब प्रबन्ध ठीक ही हो जायगा, पर मुझे इस कार्य्य में त्रुटि रहती दिखाई देती है। मैं डरता हूँ कि बात अवश्य अधूरी रह जायगी।"

यह सुनकर रामचन्द्र जी ने पूछा—"भगवन् ! कहिये वह क्या बात है। आप क्या त्रुटि देखते हैं ? जो आपका विचार हो कह डालिये।"

वशिष्ठ जी बोले—"सुनिये ! शास्त्रों की आज्ञा है कि धर्म-पत्नी को साथ लेकर ही धर्म्म-कार्य्यों का अनुष्ठान करना चाहिये। इसलिये मैं पूछना चाहता हूँ कि इसके सम्बन्ध में आपने क्या सोचा है।"

वशिष्ठ-मुनि की बात सुनते ही रामचन्द्र जी का मुख-कमल मुरझा गया और आँखों में आँसू आ गये। कुछ देर तक नीचे की ओर दृष्टि किये चुपचाप बैठे रहे, फिर अपने आँसू पोंछ और उमड़े हुए शोक के वेग को रोक कर कहने लगे—"देव ! अब तक मुझे इस बात का ध्यान नहीं आया था। कृपा करके कहिये कि क्या करना चाहिये।" वशिष्ठ कुछ देर तक एकाग्रचित्त होकर बैठे सोचते रहे और फिर बोले—"महाराज ! दूसरे विवाह के बिना और कोई उपाय मेरी समझ में नहीं आता। यदि आप दूसरा विवाह कर लें तो सपत्नीक होकर आप विधि-पूर्वक यज्ञा-

नुष्ठान कर सकते हैं, नहीं तो नहीं। वशिष्ठ जी की बात सुनकर सब चुप हो गये। कोई कुछ न बोला। रामचन्द्र जी को सीता जी प्राणों से भी प्यारी थीं। केवल लोकापवाद के भय से उनका परित्याग किया गया था और वह अब जीते ही मृतवत् हो रहे थे। जैसे वह सीता जी को पहले जी-जान से प्यार करते थे, वैसे ही अब भी करते रहे। सीता जी की मोहिनी मूर्त्ति अब तक उन के हृदय-सिंहासन पर विराजमान थी। इन सब बातों की ओर ध्यान रखते हुए कोई स्वप्न में भी विचार नहीं कर सकता था कि रामचन्द्र जी वशिष्ठ देव का प्रस्ताव मानकर दूसरा विवाह कर लेंगे। वशिष्ठ जी ने दूसरा व्याह करने के लिये रामचन्द्र जी को बहुत कुछ कहा-सुना, पर उन्होंने यह बात स्वीकार नहीं की। दूसरा विवाह करने के लिये वह उद्यत नहीं हुए। वह एक पत्नी-व्रती थे, भला दूसरा विवाह करना किस प्रकार उचित समझते? बहुत कुछ वादविवाद और कहा-सुनी के बाद यही निश्चय हुआ कि सीता जी की सोने की प्रतिमा बनवायी जाये और उसी से यज्ञकार्य्य आरम्भ किया जावे।

३

जब इस प्रकार सब बातों का निश्चय हो चुका तो सब से पहले भरत नैमिष-बन को गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने यज्ञ के लिये भूमि ठीक करायी। सभी प्रान्तों के रहने वालों के बैठने के लिये अलग-अलग स्थान बनाये गये। लक्ष्मण ने भी खाने, पीने, सोने का सब सामान जुटाकर शीघ्र ही वहाँ भिजवा दिया। इस के बाद रामचन्द्र जी ने यज्ञ का घोड़ा छोड़ा और उसकी रक्षा के लिये लक्ष्मण को नियुक्त किया। जब यह भी हो चुका तो माताओं और परिवार के सब लोगों को साथ लेकर वहाँ चले गये।

कुछ दिनों के बाद बुलाये हुए लोग यज्ञ-भूमि में पहुँचने लगे। बहुत से राजा नाना प्रकार के बहुमूल्य उपहार ले-लेकर अपने मित्रों, बन्धुओं समेत आने लगे। उनके साथ उनके सैंकड़ों नौकर भी आये। सहस्रों ऋषि-मुनि, जो यज्ञ देखने के लिए पधारे थे, उत्सव की शोभा बढ़ाने लगे। असंख्य नर-नारी नगर और देश से आ-आकर नैमिषारण्य-क्षेत्र में इकट्ठे होने लगे। निमन्त्रित राजाओं के सत्कार का भार शत्रुघ्न को सौंपा गया। ऋषि-मुनियों की सेवा-परिचर्या के लिये विभीषण नियुक्त किये गये और शेष सभी दर्शकों के आदर-सत्कार का कार्य्य रामचन्द्र जी के प्रिय सुहृद सुग्रीव को सँभलाया गया।

४

इधर तो यज्ञ की तय्यारियाँ हो रही थीं और उधर लव और कुश की अवस्था भी बढ़ती जा रही थी। जब वह बारह वर्ष के हो गये तो वाल्मीकि जी को उनकी ओर से बड़ी चिन्ता रहने लगी। वह सोचने लगे कि यदि कुछ दिनों और यही दशा जारी रही तो सीता जीवित नहीं रह सकेंगी। महाराजाधिराज के पुत्र होकर भी यह इस प्रकार तपोवन में रहें, यह कदापि उचित नहीं और साथ ही इनके धनुर्वेद सीखने और राज-नीति, राज-धर्म पढ़ने का समय भी निकला जा रहा है। इसलिए अब शीघ्र ही कोई ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे जानकी और दोनों कुमारों को रामचन्द्र जी ग्रहण कर लें। या और उपाय सोचने से क्या लाभ? अपने किसी शिष्य को उनके पास भेजकर रामचन्द्र जी को ही यहाँ क्यों न बुला लूँ? अथवा सीता और दोनों कुमारों को लेकर मैं स्वयं ही रामचन्द्र जी के पास जाऊँ और उन से निवेदन करूँ कि आप इन्हें ग्रहण कर लीजिये। मुझे विश्वास है

कि रामचन्द्र जी अवश्य ही मेरी प्रार्थना को स्वीकार करेंगे।" वाल्मीकि जी इसी प्रकार सोच-विचार करते रहे, फिर अपने मन में कहने लगे—"रामचन्द्र जी बड़े लोक-प्रिय हैं। प्रजा-रञ्जन, प्रजा को संतुष्ट रखने के लिये उन्होंने कठोरगर्भा, निरपराधिनी सीता का परित्याग किया था। ऐसी दशा में यह भी सम्भव है कि वह मेरी बात स्वीकार न करें। पर चाहे जो हो, यह भी तो उचित नहीं कि यों ही चुपचाप बठा रहूँ और उनके पास कोई संवाद न पहुँचाऊँ। इन्हीं दोनों कुमारों को उत्तरकाल में राज-सिंहासन पर बैठना और राज्य करना है। अब नीति-शास्त्र की शिक्षा पाने का समय है। यदि इस अवस्था में पिता से कुछ न सीखेंगे तो फिर राजकाज कैसे चलेगा, उसके संचालन के लिये चातुर्य कहाँ से आयेगा ? ऐसी दशा में रामचन्द्र जी यही समझेंगे कि मैंने कोसलराज्य का अहित-साधन किया और उनका मुझे दोषी ठहराना सर्वथा अनुचित न होगा। इसलिये अब इस विषय में अधिक सोच-विचार करने की ज़रूरत नहीं। शीघ्र ही राम-चन्द्र जी के पास सारा समाचार भेज देना चाहिये। या शायद यह अच्छा होगा कि रामचन्द्र जी के पास संवाद भेजने से पहले लक्ष्मण और वशिष्ठ की सम्मति ले लेनी चाहिये। देखें, वह क्या कहते हैं।"

५

एक दिन संध्या और अग्निहोत्र समाप्त कर के सायङ्काल के समय महर्षि वाल्मीकि अपने आसन पर बैठे थे और सीता जी के सम्बन्ध में कुछ सोच रहे थे कि इतने में अयोध्या का एक राजदूत पहुंचा और उस ने एक पत्र महर्षि के हाथ में दिया। वह पत्र रामचन्द्र जी ने भेजा था और उस पर 'राम' लिखा हुआ था।

यह अश्वमेध-यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रण था। जब महर्षि ने पत्र पढ़ा तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। राजदूत को विश्राम करने के लिये एक ओर टिका दिया और शिष्यों द्वारा उस के खाने;पीने का उचित प्रबन्ध करा कर अपने मन में सोचने लगे कि मैं जिस बात की इतनी चिन्ता कर रहा था, आज उस की सिद्धि का परमेश्वर की कृपा से यह अच्छा उपाय मिल गया। अब मुझे कुछ कहना-सुनना भी नहीं पड़ेगा। अपने अन्य शिष्यों के साथ लव और कुश को भी अपने साथ वहाँ ले जाऊंगा। इन के मुख, रङ्ग, ढङ्ग सब रामचंद्र जी से मिलते-जुलते हैं, इस लिये लोग देख कर समझ जाएंगे कि यह उन के ही पुत्र हैं। इन्हें देख कर रामचंद्र जी के मन में भी अवश्य मोह पैदा हो जायेगा। ऐसी दशा में हमारी मनोरथ-सिद्धि का द्वार खुल जायेगा और हमारा सब कार्य आसानी से सिद्ध हो जायेगा।"

मन में यह विचार स्थिर कर के वाल्मीकि जी सीता जी की कुटी में पहुंचे और उन से कहने लगे—"बेटी ! महाराज रामचंद्र ने अश्वमेध-यज्ञ आरम्भ किया है और हमारे पास भी आने के लिये यह पत्र भेजा है। हम कल प्रातःकाल यहां से चलेंगे। मेरी इच्छा है कि मैं अपने अन्य शिष्यों के साथ तुम्हारे दोनों पुत्रों को भी इस यज्ञ में ले जाऊं।" सीता जी ने "बहुत अच्छा" कह कर अपनी अनुमति दे दी।

वहां से वाल्मीकि जी अपनी कुटिया में पहुंचे और सब शिष्यों को अपने पास बुला कर कहने लगे—"रामायण के नायक रामचंद्र जी ने अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया है। तुम ने आज तक कोई पुर, नगर नहीं देखा, इस लिये मैं चाहता हूं कि तुम्हें भी अपने साथ ले चलूं। यज्ञ देखने के साथ-साथ तुम्हें

राजा के दर्शन भी हो जायेंगे वहां बहुत से दर्शक इकट्ठे हुए हैं। उन्हें देख कर, उन से मिल कर तुम्हें संसार की बहुत सी बातों का ज्ञान प्राप्त हो जायेगा।"

लव और कुश ने रामायण में रामचन्द्र जी की अलौकिक कीर्त्ति पढ़ रक्खी थी और वह उन्हें महापुरुष समझ कर उन में असीम श्रद्धा और भक्ति रखते थे। जब कुमारों ने सुना कि हमें उनके प्रत्यक्ष दर्शन करने का सौभाग्य मिलेगा, तो वह फूले न समाये। रामायण के नायक राजा रामचन्द्र जी, यज्ञ और वहाँ आये हुए लोगों को देखने की आशा से उनके हृदय में अपार आनन्द की लहरें बहने लगीं।

६

सीताजी की शोकाग्नि जो कुछ कजला गयी थी, अब वाल्मीकिजी के मुख से अपने स्वामी के यज्ञ की बात सुनते ही बड़े वेग से प्रज्वलित हो उठी और उन की आँखों से आँसू बहने लगे। सीता जी के शरीर में बिजली-सी कौंध गयी। उनका हाव-भाव एकदम बदल गया। सीताजी समझती थीं कि रामचन्द्रजी का मुझ पर अगाध प्रेम है और उन्हें यह भी विश्वास था कि आर्य-पुत्र ने लोकापवाद के कारण अवश हो कर ही मेरा परित्याग किया है। किन्तु जब यज्ञानुष्ठान की बात सुनी तो उनके मन में विश्वास हो गया कि रामचन्द्र जी ने अवश्य दूसरा विवाह कर लिया होगा, क्योंकि वह जानती थीं कि स्त्री को साथ लिये बिना यज्ञ नहीं हो सकता। यह ख्याल आने से सीता को प्राण निकलने के समान कष्ट हुआ। निरपराधिनी त्यागी जाने से सीताजी को पहले दुःख हो रहा था, अब दूसरे विवाह की बात सोचने से शोक-सागर और भी वेग से लहरें लेने लगा। यद्यपि अकारण

त्यागी गयी थीं, पर सीताजी अपने मन में यह सोच कर धीर रखती थीं कि आर्य्य पुत्र ने प्रजारञ्जन के लिये ही मुझे निर्वासित किया है। उनके दिल में मेरे लिये स्नेह, प्रीति, दया, और ममता सब अवश्य पहले की तरह होगी। यही विश्वास था जिससे उनका धीर बँधा हुआ था, पर अब वह विश्वास नहीं रहा। उन्हें अब यह निश्चय हो गया कि रामचन्द्र जी के दिल में मेरे लिये अब वह पहला-सा अलौकिक प्रेम नहीं रहा।

सीता जी इसी प्रकार अपने मनमें तर्क-वितर्क कर रही थीं कि इतने में कुश और लव उनकी कुटी में आये और कहने लगे—"माता जी! महर्षिजी ने कहा है कि रामचन्द्रजी का यज्ञ देखने के लिये वह कल हमें भी ले चलेंगे। अयोध्या से जो राजदूत निमन्त्रण-पत्र लेकर यहाँ आया है, हमने उसके पास जाकर रामचन्द्रजी के विषय में बहुत-सी बातें पूछी हैं। हम देख रहे हैं कि रामचन्द्रजी के सभी काम अलौकिक होते हैं। पर एक बात हमें बहुत ही अचम्भे में डाल रही है। जो भक्ति और श्रद्धा हमें रामायण के पढ़ने से उन पर हो गयी थी, अब वह सहस्त्र गुनी बढ़ गयी है। हम सुनते हैं उन्होंने अपनी प्रजा को सन्तुष्ट करने के लिये अपनी प्यारी रानी का परित्याग कर दिया है। यह सुन कर हमने उससे पूछा कि जब रानी घरसे निकाल दी गयी है तो फिर यज्ञ का कार्य कैसे होगा—क्योंकि धर्म्मानुष्ठान तो सपत्नीक ही करने पड़ते हैं। उस दूतने हमें बतलाया कि वशिष्ठजी ने रामचन्द्रजी को बहुत कहा कि दूसरा विवाह कर लो, पर रामचन्द्रजी ने उनकी बात नहीं मानी और स्पष्ट कह दिया कि मैं दूसरा विवाह कदापि नहीं करूँगा। अब सोने की सीता बनवायी गयी है, उसी के द्वारा यज्ञका कार्य किया

जायगा। माता जी ! रामचन्द्रजी जैसा मनुष्य संसार में शायद ही और कोई होगा। जिस प्रकार वह दत्त-चित्त होकर राजकाज कर रहे हैं, उसी प्रकार दाम्पत्य-प्रेम भी निभा रहे हैं। हमने प्राचीन इतिहास-ग्रन्थों में बहुत से राजाओं और महापुरुषों के वृत्तान्त पढ़े हैं, पर हमें रामचन्द्रजी के समान एक राजा भी नज़र नहीं आता। अपनी प्रजा को प्रसन्न करने के लिये अपनी रानी तक को निकाल देना और फिर सारी आयु भर दूसरा विवाह न करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करना, यह पहले देखा-सुना नहीं गया। जब से हमने रामायण पढ़ी थी तब से ही हमारे मन में यह अभिलाषा थी कि श्री रामचन्द्रजी के दर्शन अवश्य करने चाहियें। अब ऐसा करने का एक अच्छा सुयोग मिल गया है। यदि आपकी आज्ञा हो तो हम भी महर्षिजी के साथ जाकर राजा रामचन्द्र के दर्शन करें।" सीताजी ने आज्ञा दे दी। माता की अनुमति लेकर दोनों भाई महर्षिजी के पास पहुँचे।

सीताजी के मन में राजा रामचन्द्रजी के दूसरे विवाह की आशंका उत्पन्न हो गयी थी, उससे उन्हें असह्य मानसिक कष्ट हो रहा था और उस चिन्तारूपी अग्नि से उनका सारा शरीर भस्मीभूत हुआ जा रहा था। अब कुमारों के मुख से सुवर्ण-प्रतिमा की बात जो सुनी, वह सारा कष्ट और सारी चिन्ता दूर हो गयी। उनके शोक का वेग कम हो गया। उस समय सीताजी की आँखों से आनन्दाश्रु बह निकले और परित्याग का जो दुःख और क्षोभ उन्हें हो रहा था। वह भी हल्का हो गया। अब उनके हृदय में फिर सौभाग्य-गर्व लहर मारने लगा।

७

अगले दिन सवेरे ही महर्षि वाल्मीकि लव, कुश और

अन्यान्य शिष्यों को साथ लेकर नैमिषारण्य-क्षेत्र को चल दिये और दूसरे दिन दोपहर के समय वहाँ जा पहुँचे। उनके ठहरने के लिये एक विशेष स्थान पहले ही से निर्दिष्ट किया हुआ था, वशिष्ठ जी महाराज उन्हें आदरपूर्वक वहीं ले गये। जब कुश और लव ने दूर से रामचन्द्रजी के दर्शन पाये तो वह बड़े आनन्दित हुए और आपस में कहने लगे—"देखो भाई! जैसी कीर्त्ति और गुणों का बखान हमने इनका रामायण में पढ़ा है, यह साक्षात् वैसे ही हैं। अलौकिक गुणों के एकमात्र आधार, एकमात्र आश्रय हैं। जहाँ सौम्य है वहाँ गाम्भीर्य्य भी है। जैसे हमारे गुरुजी में अलौकिक कवित्व शक्ति मौजूद है, उसी तरह यह भी सद्गुणों की खानि हैं। इनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। यदि ऐसे महापुरुष को नायक मान कर हमारे गुरुजी काव्य-रचना न करते तो उनके काव्य की इतनी प्रतिष्ठा, इतना आदर कैसे होता? राजा रामचन्द्रजी के अलौकिक गुणों का बखान कर हमारे गुरुजी ने अपनी कवित्व-शक्ति को सार्थक कर लिया। जैसी उत्तम गुरुजी की कवित्व शक्ति है, वैसा ही उत्तम और उच्च उनके काव्य के नायक का चरित्र है। हम समझते हैं कि रामचन्द्रजी के दर्शन करके आज हमारे नेत्र सफल हुए।

जब सब लोग आ पहुँचे तो नियत समय पर यज्ञ का कार्य आरम्भ किया गया। एक बड़ी संख्या दीन-दरिद्र पुरुषों की प्रार्थना करते-करते यज्ञ-क्षेत्र में आ पहुँची। रामचन्द्रजी की आज्ञा थी कि दिल खोल कर दान दिया जाये, कोई भी निराश न जाये। भूखे को अन्न, नंगे को वस्त्र, धनार्थी को धन, भूमि चाहने वाले को भूमि का दान होने लगा। जिसने जो माँगा, पाया। जो कोई जो अभिलाषा लेकर वहाँ आया, भग्नाश होकर

लौटने नहीं पाया । चारों ओर गाना- बजाना हो रहा था। दर्शकगण सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणों से सजे हुए थे । वहाँ जो लोग उपस्थित थे, सभी आनन्द-प्रसन्न थे। कोई भी उदास नज़र नहीं आता था। बड़े-बूढ़े राजा और ऋषि यह कहते सुने गये कि हमने आज तक ऐसा यज्ञ कभी नहीं देखा। इतिहास जानने वाले भी कहते थे कि इतनी धूमधाम और तय्यारी से और इतना रुपया ख़र्च करके पहले कभी किसी राजा ने यज्ञ नहीं किया। रामचन्द्र जी के सभी कार्य अलौकिक होते हैं।

इसी प्रकार प्रति दिन यज्ञ-कार्य बड़ी धूमधाम और समारोह से होने लगा और आगतजन सब उसमें हिस्सा लेकर उत्सव की शोभा को बढ़ाने लगे।

सातवाँ काण्ड

लव-कुश का राम-दर्शन

एक दिन महर्षि वाल्मीकि अपने मनमें सोचने लगे— "हमने इतने दिन यज्ञ देखने में योंही बिता दिये, अपने अभिप्राय को सिद्ध करने का कोई उपाय न निकाला। जो हो चुका सो हो चुका, पर अब यह सोचना चाहिये कि किसी प्रकार कुश और लव को रामचन्द्रजी से मिलाऊँ ? उन्हें एक दिन अपने साथ दरबार में ले जाऊँ या रामचन्द्रजी को यहाँ बुला कर एकान्त में उनसे सब बातें कह दूँ और फिर सीता को ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करूँ । बहुत कुछ सोच-विचार के बाद वाल्मीकि-मुनि ने यही निश्चय किया कि कुश और लव के द्वारा रामायण का गाना कराना चाहिये । जब वह जगह-जगह गाते फिरेंगे तो रामचन्द्रजी की भी कभी न कभी उन पर दृष्टि पड़ेगी

और उनके मन में भी अपना चरित्र सुनने की अभिलाषा उत्पन्न होगी और वह कुमारों को अवश्य अपने पास बुलायेंगे । यदि ऐसा हुआ तो बिना कुछ कहे-सुने ही हमारा मनोरथ सिद्ध हो जायगा ।"

अपने मनमें यह सोच कर महर्षि वाल्मीकि ने कुश और लव को अपने पास बुलाया और कहा—"बेटा ! अब तुम्हें मिल कर वीणा के साथ रामायण गाकर सुनानी होगी । तुम प्रति दिन ऋषियों, राजाओं, पुरवासियों और राष्ट्र-निवासियों के डेरों में जा-जाकर प्रसन्न चित्त हो कर स्वर के साथ रामायण सुनाया करो । यदि राजा रामचंद्र तुम्हें बुलायें और गाना सुनाने के लिये आग्रह करें, तो तत्क्षण उन्हें रामायण सुनाना । एक बात का ध्यान रखना कि जब तक उन के पास रहो किसी प्रकार की कुचेष्टा वा धृष्टता मत करना । राजा सब का पिता होता है, इस लिये तुम भी पुत्रवत् व्यवहार और बर्त्ताव करना । यदि रामायण सुन कर राजा प्रसन्न हों, और उपहार-रूप में तुम्हें कुछ धन देना चाहें तो तुम अति नम्रता और भक्ति के साथ उसे लेना अस्वीकार करना और यह कह कर अपनी निर्लोभता दिखाना कि हम बनवासी हैं, बन में होने वाले कंद-मूल-फलों से अपना निर्वाह कर लेते हैं, हमें धन से क्या प्रयोजन है ? यदि राजा तुम से तुम्हारा परिचय मांगें तुम्हारा वृत्तांत जानना चाहें, यह पूछें कि तुम कौन हो, किस के पुत्र हो, तो तुम केवल यही बतलाना कि हम वाल्मीकि के शिष्य हैं ।"

२

इस प्रकार समझा कर और उचित उपदेश दे कर वाल्मीकि जी तो चुप हो गए और दोनो कुमारों ने गुरु की आज्ञा

पालन करने के लिये वीणा ले कर जगह-जगह रामायण गाते फिरना प्रारम्भ कर दिया। जो कोई उन का सङ्गीत सुन पाता, मोहित हो जाता और निश्चेष्ट भाव से आंसू गिराने लग जाता। एक तो रामचंद्र जी का परम पवित्र और अलौकिक चरित्र, दूसरे महर्षि वाल्मीकि की अद्भुत कवित्व-शक्ति, तीसरे कुश और लव का रूप सौंदर्य्य जिसे जो देखता मोहित हो जाता। चौथे उन कुमारों का स्वर ऐसा मीठा था कि उस के सामने कोकिला का स्वर भी कर्कश प्रतीत होता था और वह वीणा बजाने में भी ऐसे कुशल और सिद्धहस्त थे कि लोगों ने वैसा प्रवीण बजाने वाला न कभी देखा था और न सुना ही था। यह सब बातें ऐसी थीं कि जो श्रोताओं को मोहित किये बिना नहीं छोड़ती थीं और शायद ही कोई ऐसा मनुष्य होगा जिसे उन का गाना-बजाना सुन कर असीम आनंद प्राप्त न हुआ हो।

३

कुछ दिन इसी प्रकार बीत गये। कई आदमी रामचंद्र जी के पास जा कर कहने लगे—"महाराज! दो अति रूपवान ऋषि-कुमार वीणा बजा कर आप का चरित्र गाते फिरते हैं। जो सुनता है मोहित हो जाता है। हम समझते हैं कि आप ने भी शायद ऐसा मधुर गान पहले कभी न सुना होगा। दोनों जोड़े भाई हैं। उन का सौन्दर्य अनुपम है, कभी मनुष्यों में देखने में नहीं आया। सङ्गीत, स्वर की मधुरता के विषय में जो कहा जाये थोड़ा है। किन्नर भी उन के सामने नहीं ठहर सकते, लज्जित हो जाते हैं। जो काव्य वह गाते हैं, हम नहीं जानते किस की रचना है, पर हम निःशङ्क भाव से कह सकते हैं कि हम ने ऐसी अलौकिक ललित रचना इससे पहले कभी नहीं देखी। महाराज

हम आप से यही प्रार्थना करते हैं कि उन्हें राज-सभा में बुलाइये और उनका गाना सुनिये। उन्हें देख कर और उनका गाना सुन कर अवश्य ही आपको बड़ा आनन्द होगा।"

४

जब लोगों से यह बात सुनी तो रामचन्द्र जी के मन में कुश और लव का गाना सुनने की बड़ी इच्छा पैदा हुई। कुमारों को बुलाने के लिये एक ब्राह्मण भेजा गया। हमें राजा ने बुला भेजा है, यह समाचार पाते ही वह दोनों भाई बड़ी नम्रता से राज-सभा में चले आये। उन्हें देखते ही रामचन्द्र जी के मन में एक अभूत पूर्व और अवर्णनीय भाव पैदा हुआ। उनके सारे शरीर में एक अपूर्व रस का सञ्चार हो गया, पर यह समझ में नहीं आया कि यह प्रीति-रस है या विषाद-रस। भ्रान्त चित्त से होकर थोड़ी देर तक लगातार उन्हीं की ओर देखते रहे। आंख तक न झपकी। रामचंद्र जी कुछ भी न समझ सके कि हमारे हाव-भाव, रङ्गढङ्ग में यह अपूर्व परिवर्त्तन क्यों हो गया। चित्र में लिखे के समान बैठे रह गये। दोनों राजकुमार धीरे-धीरे उन के पास पहुँचे और "महाराज की जय हो" यह कह कर अभिवादन करके उचित स्थान पर जा बैठे और बड़ी नम्रता से पूछा कि—"महाराज! हमारे बुलाये जाने का क्या प्रयोजन है?" जब कुमार समीप आ बैठे तो ध्यान से देखने पर रामचंद्र जी को मालूम हुआ कि उनके शरीर में बहुत से लक्षण हैं जो मुझ से और सीता जी से मिलते-जुलते हैं। इससे वह बहुत ही चकित हुए। सभा में बहुत से लोग उपस्थित थे, इस लिये अपने आन्तरिक भाव को बड़ी कठिनता और सावधानी से छिपा कर कहने लगे—"हमने सुना है कि तुम्हें बहुत अच्छा गाना आता

है। जो कोई सुन पाता है, मोहित हो जाता है। सब लोग मुक्त कण्ठ से तुम्हारे गाने की प्रशंसा करते हैं। मैं भी चाहता हूँ कि उसे सुनूँ। यदि कुछ आपत्ति न हो तो कुछ सुनाओ।" कुमारों ने उत्तर दिया—"महाराज! हम जो काव्य गाया करते हैं वह बहुत बड़ा है। उसमें आपका जीवन-चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। आज्ञा दीजिये कि उसका कौनसा अंश अब सुनायें।" कुश और लव के अद्भुत रूप, लावण्य और उनके शरीर में अपने तथा सीता जी के रूप का प्रतिबिम्ब देख कर रामचंद्र जी का चित्त चञ्चल और अधीर हो उठा। सीता जी के वियोग से होने वाला दुःख फिर उमड़ आया। इस समय रामचंद्र जी की दशा ऐसी हो गयी कि वह अपने आपको सँभाल न सके। उनके मन में इच्छा हुई कि शीघ्र ही सभा समाप्त करके एकान्त में चलना चाहिये। फिर अपने मन की चञ्चलता को रोक कर कुमारों से कहा—"अच्छा! आज तो जहाँ से चाहो सुना दो। कल से प्रति दिन नियमपूर्वक थोड़ा-थोड़ा करके हमें सारा काव्य सुना देना।" कुमारों ने आज्ञा पाते ही गाना-बजाना आरम्भ किया। जो लोग सभा में उपस्थित थे, सब साधुवाद देने लगे। कवि के अद्भुत पाण्डित्य, रचना-चातुर्य्य और शैली को देख कर रामचन्द्र जी ने पूछा—"यह काव्य किसने रचा है? तुमने ऐसा गाना-बजाना किससे सीखा है?" कुश और लव ने उत्तर दिया—"महाराज! इस काव्य के रचने वाले महर्षि वाल्मीकि जी हैं। हम उनके आश्रम में रहते हैं और हम ने जो कुछ भी सीखा है, सब उन्हीं से सीखा है।"

५

रामचन्द्र जी बोले—"महर्षि वाल्मीकि ने यह अद्भुत

काव्य रच कर अपने कविता-पाण्डित्य का बहुत अच्छा परिचय दिया है। ऐसा मनोहर और रोचक है कि चाहे जितना सुन लो तृप्ति नहीं होती। तुमने बहुत परिश्रम किया है, इस लिये हम तुम्हें और कष्ट नहीं देना चाहते। अब अपने डेरों को जाओ।" कुश और लव को इस प्रकार विदा करके रामचन्द्र जी ने शीघ्र ही सभा समाप्त कर दी और स्वयं एकान्त में जाकर सोचने लगे इन ऋषि—"कुमारों को देख कर मेरा मन इतना अधीर और व्याकुल क्यों हो गया। अपनी सन्तान को देखकर जो भाव मैंने पिता के मन में होता सुना है इन्हें देख कर मुझे भी ऐसी भाव का अनुभव हो रहा है। पर यह कुछ समझ में नहीं आता कि इसका कारण क्या। ऐसा होना कदापि सम्भव नहीं। किस निष्ठुरता, निर्दयता के साथ मैंने सीता का परित्याग किया था, उसका ध्यान आते ही मुझे निश्चय हो जाता है कि शोक, लज्जा और अपमान के कारण सीता ने कभी के प्राण छोड़ दिये होंगे। लक्ष्मण के लौटते ही सीता ने आत्म-हत्या कर ली और या कोई हिंसक पशु उसे खा गया होगा। ऐसे घोर विपत्काल में सीता जीती रही हो और फिर सुख से सन्तान उत्पन्न करके मन लगा कर, इतने परिश्रम से उसका पालन-पोषण किया हो, यह कदापि सम्भव नहीं हो सकता। मेरे ऐसे अच्छे भाग्य कहाँ ?" इस प्रकार सोचते-सोचते रामचन्द्र जी का मन काबू में न रहा और उनके नेत्रों में आँसू बहने लग गये। शोक के वेग को रोक कर फिर सोचने लगे—"इनके आकार और चेष्टाओं से यही प्रतीत होता है कि यह क्षत्रिय होंगे। जो लक्षण मेरे तथा सीता के शरीर में हैं उनमें से बहुत से इन दोनों कुमारों में भी विद्यमान हैं। आँख, कान, नाक, ठोड़ी सारे अङ्ग

प्रत्यङ्ग सब ठीक वैसे ही हैं। किसी में भी ज़रा-सा भेद नहीं है। क्या परमेश्वर ने ऐसी समानता का दृष्टान्त यों ही पैदा कर दिया है ? एक बात और भी है। वह कहते हैं कि हम वाल्मीकि जी के आश्रम में रहते हैं। मैंने भी लक्ष्मण को यही कहा था कि सीता को तपोवन में छोड़ आना। सम्भव है महर्षि वाल्मीकि को उन पर दया आयी हो और वह उन्हें अपने आश्रम में ले गये हों और उसी जगह इन दोनों भाइयों ने जन्म लिया हो। कम-से-कम लक्षणों से यही दिखाई देता है। परित्याग के समय सीता के लक्षण भी यमज गर्भवती के से थे। यदि इन बातों को सामने रक्खा जाये तो मेरी आशा निर्मूल नहीं हो सकती। नहीं, नहीं, मृगतृष्णा के समान है और इन्हें सोच-सोच कर मैं व्यर्थ कष्ट, दुःख भोग रहा हूँ। जब मैंने राक्षसों की तरह ऐसी निष्ठुरता और निर्दयता से, ऐसी शुद्ध आचरणवाली पतिव्रता, पति-परायणा स्त्री का उसके निरपराधिनी होने पर भी पूर्ण गर्भ की दशा में त्याग कर दिया, तो क्या मेरी यह आशाएँ कभी पूर्ण हो सकती हैं ? हाय सीता ! तुझ-सी भोली-भाली सरल साधु स्वभाव वाली स्त्री कैसे निर्दयी पुरुष के हाथ पड़ी ! जब मैंने शुद्ध, पवित्र आचरणवाली सुशीला और पतिव्रता कामिनी को इस प्रकार घर से निकाल दिया तो भला मेरे समान पापी, पति और कठोर हृदय मनुष्य संसार में और कौन होगा ?" शोक-विलाप करते और इस प्रकार अपने मन में सोचते-सोचते रामचन्द्र जी कुछ अधीर से हो गये और उनके नेत्रों से टप-टप आँसू गिरने लगे। जब शोक का वेग कुछ कम हुआ तो फिर मन में कहने लगे—"वाल्मीकि जी सीता को अपने आश्रम में ले गये होंगे और वहीं यह जोड़े पुत्र उत्पन्न हुए

होंगे। निस्सन्देह ऐसा ही हुआ होगा। यह दोनों बालक वास्तव में ऋषि-कुमार नहीं हो सकते, इस बात का एक प्रमाण यह भी है कि इनके यज्ञोपवीत-संस्कार हुए बहुत देर हुई मालूम नहीं होती। इनकी आयु इस समय बारह वर्ष से अधिक दिखाई नहीं देती। शायद ग्यारहवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीत-संस्कार हुआ होगा। यदि वह ऋषि-कुमार होते तो महर्षि वाल्मीकि जी आठ वर्ष की अवस्था में ही उनका उपनयन-संस्कार करा देते। एक बात और भी है। उपनीत ब्राह्मण-कुमार की जो वेष-भूषा होती है वह इनकी दिखाई नहीं देती। सब रङ्ग-ढङ्ग क्षत्रिय-कुमारों का-सा है। और यदि यह क्षत्रिय हैं तो अवश्य ही सीता जी के पुत्र होंगे, और किसी के नहीं हो सकते। कारण कि और किसी क्षत्रिय के पुत्रों को वन में रहने और वहीं उपनयन कराने की क्या आवश्यकता थी? निश्चय ही यह मेरे-जैसे अभागे पिता की सन्तान हैं, नहीं तो इनकी ऐसी दीन, हीन और शोचनीय दशा क्यों होती?" रामचन्द्र जी फिर मन-ही-मन सोचने लगे—"यदि यह दोनों कुमार मेरी ही सन्तान हैं और सीता भी अब तक जीवित हो तो इससे बढ़कर और क्या आनन्द का विषय होगा? यदि यह बात ठीक हो तो मैं आशा कर सकता हूँ कि सीता फिर एक दिन मेरी आँखों को आनन्दित करेगी। इस बात का ध्यान आते ही मैं हर्ष से फूल उठता हूँ।" सीता सम्मिलन की बात मन में स्थिर करके रामचन्द्र जी फिर मन में कहने लगे—"जब इतने लम्बे वियोग के बाद पहली बार सीता से मिलन होगा तो निश्चय ही मेरे धैर्य्य का बाँध टूट जायेगा। सीता भी आनन्द-सागर में डुबकियाँ लगायेगी। प्रेम के आँसू बहेंगे।" थोड़ी देर तक यह दृश्य रामचन्द्र जी की मन की आँखों के आगे रहा।

फिर यह चिन्ता उनके मन में पैदा हुई कि शोक है मैंने सीता के प्रति बड़ी निर्दयता का व्यवहार किया । अब मैं कौन-सा मुख लेकर उससे मिलूँगा अथवा मैं इस बात की चिन्ता ही क्यों करूँ ? सीता का हृदय महत उदार है। उसका स्वभाव बड़ा सरल है। वह बड़ी दयावती है मेरे अपराध को वह अवश्य क्षमा कर देगी । जब मिलन होगा, मैं स्वयं ही क्षमा माँग लूँगा।" फिर यह ध्यान आया कि मैंने लोकापवाद के भय से, प्रजा की निन्दा से बचने के लिये ही सीता का परित्याग किया था यदि उसे अब फिर ग्रहण करूंगा तो क्या लोग मेरी निन्दा न करेंगे ? फिर वही बात होगी। प्रजा की दृष्टि में मेरा यह काम बुरा जंचेगा और ऐसी दशा में जो दुःख और शोक विरह के कारण मैंने और प्राणप्यारी सीता ने सहन किया है, जो कष्ट हम ने उठाया है, वह सब व्यर्थ जायेगा।" अब रामचंद्र जी को कोई उपाय न सूझा । निराश होने के कारण उन का मुख मलिन पड़ गया। फिर क्रोधवश होकर कहने लगे—"अब मैं निर्मूल लोकापवाद की कुछ भी परवाह न करूंगा। यदि मेरे सीता को अब ग्रहण करने पर भी प्रजा असंतुष्ट अप्रसन्न होगी,तो होने दो । अब मैं किसी की बात न मान कर स्वेच्छानुसार कार्य करूंगा । राजसिंहासन पर बैठ कर कौन मेरी तरह आत्म-वंचना कर सकता है ? प्रजा को प्रसन्न, सन्तुष्ट रखने के लिये मैंने अब तक कोई कसर नहीं रक्खी। यदि इस पर भी वह प्रसन्न न हो तो न सही । सीता का परित्याग करना ही मेरे लिये उचित नहीं था। अब मैं सीता को अवश्य ही ग्रहण कर लूँगा । नहीं तो राज-काज सब भरत को सौंप कर स्वयं वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करूँगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि सीता के वियोग में राज्य करने, राज्य-

सुख भोगने से प्रिया के साथ बन में रहना कहीं अच्छा और सुखदायक है।

—:o:—

आठवां कांड

बिछुड़ों का मिलाप तथा अन्तिम परीक्षा

महर्षि वाल्मीकि जी ने राजा रामचंद्र जी के जीवनचरित्र के आधार पर 'रामायण' नाम से एक अद्भुत और सुन्दर काव्य की रचना की है, उन के दो परम रूपवान शिष्य उसे वीणा के साथ गा गाकर सुनाते फिरते हैं और वही दोनों कुमार कल सवेरे राजसभा में उपस्थित होकर, रामायण गाकर सुनायेंगे—यह समाचार दूर और समीप, यज्ञ देखने आये हुए सभी लोगों को मिल गया। प्रातःकाल होते ही राजा, ऋषि-मुनि और अन्यान्य लोग संगीत सुनने की लालसा से राजसभा में आ-आकर इकट्ठे होने लगे। रामचन्द्रजी आकर सिंहासन पर विराजमान हो गये और भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण और दूसरे मित्र जिन्होंने लङ्का-युद्ध में रामचन्द्रजी की सहायता की थी, सिंहासन के दायें-बायें यथोचित स्थानों पर जा बैठे। कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्त्ति आदि राज-परिवार की स्त्रियाँ अरुन्धती और अन्य ऋषि-पत्नियों को साथ लेकर एक ओर अलग स्थान में बैठ गयीं। सब लोग अपने-अपने स्थान पर बैठ कर नये काव्य को सुनने की उत्कण्ठा से दोनों कुमारों के विषय में परस्पर नानाप्रकार की चर्चा करने लगे। कुमार अभी नहीं आये थे और सब लोग उनके आने की राह देख रहे थे। महर्षि वाल्मीकि जी कुश और लव को साथ

लेकर सभा में आ पहुँचे। उन के आते ही सारी सभा में कोलाहल मच गया। कुछ लोग ऐसे भी थे, जिन्हों ने पहले दिन कुमारों को देख लिया था और गाना भी सुन लिया था। अब वह लोग उँगली उठा-उठा कर अपने इधर-उधर बैठे हुए लोगों से कहने लगे कि देखो यही वह दोनों कुमार हैं। उन्हें देखकर सभा के सभी लोग खड़े हो गये। सब ने महर्षि वाल्मीकि का यथोचित आदर-सत्कार किया। महर्षि और कुश और लव के लिये पहले ही स्थान निर्दिष्ट कर दिया गया था। अब वह अपने-अपने स्थान पर जा बैठे। गाना सुनने के लिये सभी उत्सुक हो रहे थे। जब सब कुछ ठीक-ठिकाने हो गया तो गाना आरम्भ होने की बाट देखने लगे।

२

थोड़ी देर के बाद वाल्मीकि जी ने सभा में चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर रामचन्द्र जी को कहा—"सब लोग गाना सुनने के लिये उत्सुक हो रहे हैं, आज्ञा हो तो अब आरम्भ किया जाये।" रामचन्द्र जी ने अनुमति दे दी और कुश और लव ने वीणा लेकर गाना आरम्भ किया। महर्षि जी ने अपने शिष्यों को पहले-ही-से समझा रक्खा था कि जिस-जिस प्रसङ्ग में राम-सीता के परस्पर प्रेम और स्नेह का अधिक वर्णन आता है, आज वही सुनाया जाये। कुश और लव ने अब वैसा ही किया। उन के दाम्पत्य-प्रेम के विषय में थोड़ा गाकर सुनाया था कि रामचन्द्र जी का दिल भर आया। उन की आँखों से आँसू टप-टप गिरने लगे। वह टकटकी बाँधे लगातार कुमारों की ओर देख रहे थे। ज्यों-ज्यों ध्यान से देखते थे त्यों-त्यों यह विश्वास दृढ़ होता जाता था कि यह अवश्य सीता जी के ही पुत्र हैं। जब भरत, लक्ष्मण

और शत्रुघ्न ने देखा कि दोनों कुमार सूरत-शकल, आकृति-प्रकृति में रामचन्द्र और सीता जी से बहुत मिलते-जुलते हैं, तो वह भी अपने मन में नाना प्रकार के तर्क-वितर्क करने लगे। इन को छोड़ सभा में जो लोग बैठे थे वह सब भी यही कह रहे थे कि कैसे आश्चर्य्य की बात है! दोनों कुमार ठीक रामचन्द्र जी की शक्ल के हैं। यदि आयु और वेष-भूषा में भेद न होता तो यह कहना प्रायः असम्भव हो जाता है कि रामचन्द्र जी कौन से हैं। सब यही कहते सुनायी पड़ते थे कि ऐसा दिखाई देता है कि मानों राम-चन्द्र जी ने ही दो कुमारों का रूप धारण कर लिया है। उनकी कुमारावस्था के दो रूप लोगों के सामने हैं। सब सभासद मुग्ध हो गये और निश्चेष्ट भाव और अविरल दृष्टि से उन के रूप-लावण्य को निरखने और गाना सुनने लगे।

थोड़ी देर यही दशा रही, फिर रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण को कहा "प्रिय लक्ष्मण! इन दोनों कुमारों को एक सहस्र सुवर्ण मुद्रा दे दी जायें। यह बात सुन दोनों कुमार बोल उठे—महाराज! हम बनवासी हैं, बनमें रहते हैं और कन्द-मूल-फल जो कुछ वहाँ प्राप्त हो जाता है, वही खाकर अपना निर्वाह कर लेते हैं और वृक्षों का वल्कल ओढ़ते हैं। हमें भोग-विलास की अभिलाषा नहीं। हमें धन लेकर क्या करना है? हमने यत्नपूर्वक, बड़े परि-श्रम से आप का चरित्र पढ़ा था, आज यही आपको सुनाने का सुअवसर पा जाने के हमारा सारा परिश्रम सफल हुआ। आप की प्रसन्नता पाकर हम अपने आपको कृतकृत्य, धन्य, मानते हैं।"

३

जब लोगों ने कुमारों की इस प्रकार बातें सुनीं और उनकी निर्लोभता देखी तो सब हैरान हो गये। उनकी सूरत को ध्यान-

पूर्वक देखने से कौशल्या के मन में भी यह दृढ़ विश्वास हो गया कि यह बालक अवश्य सीता के ही पुत्र हैं—इस बात को सोचने से उन्हें बड़ा दुःख पहुँचा। "हाय! बेटी जानकी" कहकर अचेत हो नीचे गिर पड़ीं। उनकी यह दशा देखकर सब को दुःख हुआ। सबने मिलकर उन्हें सचेत करने का प्रयत्न किया। थोड़ी ही देर गाना सुना था कि सबके हृदय में सीता-वियोग और शोक का सागर डाढें मारने लगा। सब लम्बे-लम्बे साँस लेने और रोने लगे। कौशल्या ने शोक-विह्वल होकर कहा—"यदि कोई इन कुमारों को मेरे पास ले आवे तो इन्हें अपनी गोद में बिठाकर, इनका मुख चूमकर एक बार अपना जी तो ठण्डा कर लूँ। मेरे मन में सीता के वियोग के कारण जो दुःख हो रहा है—ऐसा करने से उसका वेग कुछ कम हो जायगा। इन दोनों कुमारों के सारे अङ्ग, इनके सारे लक्षण, राम और सीता के-से हैं। इनके सभा में पग धरते ही न जाने किसने मेरे कान में यह कह दिया था कि यह बालक अवश्य हमारे राम के ही वंशधर हैं। उसी क्षण से इनके लिए मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं। सीता से बिछुड़े बारह वर्ष हो चुके और अब मैं उसे बहुत कुछ भूल गयी थी, पर इन्हें देखकर फिर मेरा शोक नया हो गया। मेरी प्यारी बेटी जानकी! तू कहाँ है? तेरी क्या दशा है? क्या तू अब तक जीवित है या इस दुःखमय पापी संसार को छोड़ कर परलोक में जा बसी है?" यह कहकर कौशल्या फिर अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ीं। जैसे हो सका फिर उनकी मूर्च्छा दूर की गयी। जब होश आया तो वह बड़ी शोकाकुल होकर कहने लगीं—"इन दोनों कुमारों को शीघ्र मेरे पास बुलाओ। कोई जाकर लक्ष्मण से ही कह दे। वही इन्हें लाकर मेरी गोद में बिठा देगा।"

अरुन्धती कौशल्या के पास ही बैठी थी, जब उसने कौशल्या को शोक-निमग्न देखा तो एक दासी लक्ष्मण के पास भेजी। दासी ने जाकर कौशल्या की दशा लक्ष्मण से कही। लक्ष्मण ने उस समय बड़ी चतुरता से सभा को विसर्जन कर दिया और कुश और लव को माता कौशल्या के पास ले गये। कौशल्या ने कुमारों को गोद में बिठा लिया और बार-बार उनका मुख चूमने और "हा बेटी जानकी! तू कहाँ है ?" कह-कह कर रोने, विलाप करने लगीं। जब कौशल्या की यह दशा देखी तो सुमित्रा और उर्मिला भी अपने दिल को संभाल न सकीं और रोने लग गयीं। जब कुश और लव ने सबको इस प्रकार रोते देखा तो वह अवाक् और निश्चेष्ट रह गये।

४

थोड़ी देर के बाद जब शोक का वेग कुछ कम हुआ तो कौशल्या अपना सन्देह दूर करने के लिये उन कुमारों से पूछने लगीं—"तुम्हारा क्या नाम है ? तुम्हारे माता-पिता का क्या नाम, धाम है ? बालकों ने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया हमारे नाम कुश और लव हैं। हम नहीं जानते कि हमारे पिता कौन हैं और न हम ने उन्हें कभी देखा ही है। हमारी माता एक तपस्विनी हैं। पर आज तक हम ने उनका नाम भी नहीं सुना। उनसे अथवा और किसी से हम ने उनका नाम पूछा भी नहीं। तपोबन में हमारा निवास है। हम दोनों महर्षि वाल्मीकि के शिष्य हैं और उन्हीं की सेवा में रहकर विद्याऽध्ययन करते हैं।"

जब कौशल्या ने कुश और लव से यह बातें सुनीं तो उन का सन्देह बहुत कुछ जाता रहा। पर उन्हें शान्ति न मिली और वह फिर पूछने लगीं—"तुम्हारी माता की सूरत-शक्ल कैसी है ?"

कुश और लव ने सीता की आकृति-प्रकृति का यथावत् वर्णन कर दिया। इससे सब को निश्चय हो गया कि हो न हो यह अवश्य ही सीता के पुत्र हैं। कौशल्या और सारा राज-परिवार एक बार शोक-सागर में निमग्न हो गया। कौशल्या ने फिर पूछा कि तुम्हारी माता की दशा आजकल कैसी है ? कुमारों ने उत्तर दिया कि वह तो देर से जीवन्मृत-सी रहती हैं और उनका शरीर दिन-दिन इतना दुबला होता जा रहा है कि उनके अब बहुत दिनों तक जीते रहने की आशा नहीं की जा सकती।

सारे राज-परिवार ने कुश और लव की माता को ही सीता समझ लिया था। जब सुना कि उनकी दशा बहुत ख़राब है, तो सब बेचैन हो गये और शोकातुर होकर विलाप करने लगे। कौशल्या के मन में अभी कुछ सन्देह शेष था। उसको दूर करने के लिये लक्ष्मण से बोलीं—"बेटा ! महर्षि वाल्मीकि जी को तो एक बार बुलाओ।" माता की आज्ञा पाकर लक्ष्मण झट वाल्मीकि जी के पास गये और उन्हें बुला लाये। कौशल्या ने उठकर बड़े आदर से प्रणाम किया और बैठने के लिये आसन देकर, हाथ जोड़ पूछने लगीं—"कृपया यह स्पष्ट बताइये, यह दोनों शिष्य आप के कौन हैं ?" इस पर महर्षि ने लक्ष्मण के सीता को बन में छोड़कर चले आने से लेकर अन्त तक का सारा वृत्तान्त सुनाया। रामचन्द्र जी के वियोग से सीता जी की जो दशा हो रही थी, वह भी सब कह सुनायी। इन बातों को सुनते ही सब लोग रोने लग गये। कौशल्या शोक-विह्वल होकर यह कहकर रोने, विलाप करने लगीं कि "हाय बेटी सीता ! परमात्मा ने तुम्हारे भाग्य में ऐसी-ऐसी घोर विपत्तियाँ और असह्य दुःख क्यों लिखे हैं ?" तात्पर्य यह है कि अब इन बातों में किसी को भी सन्देह न

रहा कि सीता जी अभी तक जीवित हैं और कुश और लव दोनों उन्हीं के पुत्र हैं।

५

जब इतना समय बीत जाने पर कुश और लव को अपना सच्चा सच्चा हाल मालूम हुआ तो उनके मन में नाना प्रकार के अनिर्वचनीय भाव उठने लगे। यह दशा देख महर्षि वाल्मीकि ने उनसे यों कहा—"प्यारे पुत्रो ! यह तुम्हारी दादी और चाची हैं। इन्हें प्रणाम करो।" गुरु की आज्ञा पाते ही दोनों कुमारों ने कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, उर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्त्ति के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। महर्षि फिर बोले—"तुम ने रामायण में लक्ष्मण नामी एक महापुरुष का बहुत कुछ गुण-कीर्त्तन पढ़ा है, देखो वह यह तुम्हारे सामने हैं। यह तुम्हारे तीसरे चचा हैं।" यह परिचय पाते ही कुमारों ने सिर से पैर तक लक्ष्मण की ओर निहारा और फिर उनके चरणों में प्रणाम किया।

थोड़ी देर पीछे कौशल्या ने लक्ष्मण को कहा कि जाकर रामचन्द्र और वशिष्ठ-देव को बुला लाओ। माता की आज्ञा पा कर लक्ष्मण उन दोनों को वहां बुला लाये। अब कौशल्या ने आंखों में आँसू भर कर रुके हुए गले से दोनों कुमारों का यथार्थ परिचय दिया और यह भी बतलाया कि सीता अभी जीवित हैं। रामचन्द्र जी के मन में कुश और लव के विषय में जो सन्देह शेष था, अब वह जाता रहा। उनकी आँखों से टपाटप आँसू गिरने लगे, ययां तक कि उनकी सारी छाती तर हो गयी। वह दोनों कुमारों को अविरल प्रेम-दृष्टि से देखते रहे। इसके बाद कौशल्या ने सम्मति दी कि अब सीता को दोनों पुत्रों-सहित

ग्रहण कर लेना चाहिये। इस पर रामचन्द्र जी चुप रहे और कुछ न बोले। उनके मौन से स्वीकृति के लक्षण पाकर उन्होंने वाल्मीकि जी को कहा कि अब सीता को ले आइये। सीता को लाने के लिए तत्क्षण एक पालकी गयी और साथ वाल्मीकि जी का एक शिष्य गया। शिष्य को कह दिया गया कि सीता को वाल्मीकि जी की कुटी में ले आवे। यज्ञ में जो लोग आये हुए थे अब उन सबको पता लग गया कि यह दो कुमार जो रामायण गाकर सुनाते फिरते हैं, ऋषि-कुमार नहीं बल्कि राजकुमार हैं और सीता जी के परित्याग के पश्चात् इन्होंने वाल्मीकि जी के आश्रम में जन्म लिया था और सीता जी अब तक जीवित हैं।" जब सबको यह मालूम हो गया कि रामचंद्र जी अब उन्हें फिर ग्रहण करेंगे और उन्हें यहां लाने के लिए पालकी भी भेज दी गयी है तो इससे कुछ लोग तो बहुत प्रसन्न हुए पर बीच में कोई कोई कहते थे—"हमारे राजा बड़े अव्यवस्थित-चित्त हैं। इन के चित्त में बड़ी अस्थिरता है। जब सीता जी को फिर ग्रहण करने लगे हैं तो भला उनका परित्याग ही क्यों किया था। सीता तो वही हैं, उन में अब क्या कुछ परि-वर्त्तन हो गया? जिस बात से सीता का परित्याग किया गया था, वह तो अब भी है। वह दोष अब मिट नहीं गया। बड़े आदमियों की सभी बातें निराली होती हैं, कुछ भी समझ में नहीं आता।"

६

यद्यपि रामचंद्रजी ने सीता का फिर ग्रहण करने का निश्चय कर लिया, पर लोगों के यह विचार भी होते-होते उनके कान में जा ही पहुँचे। इससे फिर गड़बड़ हो गई। उनका चित्त स्थिर न

रहा, चलायमान हो गया। उन्हों ने पहले सोचा था कि मेरे अब सीता को ग्रहण करने में कोई आपत्ति न होगी, पर जब उन्हों ने यह सुना कि लोग अब भी सीता को शुद्धाचारिणी नहीं समझते, और उन के शुद्ध, पवित्र चरित्र को कलङ्क लगा कर दूषित करते हैं, वह विषाद के मारे दुःख-सागर में डूब गये। उन्हों ने बहुत सोचा, पर यह समझ में न आया कि अब क्या करना चाहिये। किंकर्त्तव्यविमूढ़ से होकर लक्ष्मण से पूछने लगे। बहुत कुछ कहा सुनी के बाद यह निश्चय हुआ कि यदि सीता सब के सामने अपने आचरण, अपने चरित्र को शुद्ध, पवित्र सिद्ध कर दें तो ग्रहण कर ली जायें अन्यथा नहीं ! रामचन्द्र जी की आज्ञा से लक्ष्मण ने वह विचार जा कर वाल्मीकि जी को सुना दिया। वाल्मीकि ने ज्यों ही यह बात सुनी वह दौड़े-दौड़े रामचन्द्र जी के पास आये और उन्हें यह समझाया कि सीता शुद्धाचारिणी हैं, उन के आचरण में किसी प्रकार का दोष नहीं है। पर रामचन्द्र जी न माने और कहने लगे—"भगवन्! सीता की पवित्रता के विषय में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। मैं भली भाँति जानता हूं कि सीता शुद्ध है, पर क्या करूं, शासनभार अपने सिर ले मैं स्वाधीन नहीं रहा। अब पराधीन हूं। आप का उपदेश था कि प्राणपन से जी जान से प्रजा-रञ्जन करना राजा का परम धर्म है। आप ही बताइये कि उस धर्म का पालन किस तरह करूं। यदि पालन न करूंगा तो इस लोक में मेरी निन्दा होगी और परलोक में मुझे नरक का भागी बनना पड़ेगा। सीता के सम्बन्ध में लोगों के विचार बड़े कठिन हैं, वह उन के चरित्र को पवित्र नहीं समझते। जब तक यह कलङ्क दूर न हो जाये मैं किस प्रकार उन्हें ग्रहण करूं ? जब से सीता को छोड़ा उस के साथ अपने सब सुख भी

छोड़ दिये । कौन जानता है कि मैं किस तरह जी रहा हूं । मैंने अवश हो कर ही सीता का परित्याग किया था । एक बार मेरे जी में भी यह आया था कि यदि प्रजा अप्रसन्न होती है तो होने दो, मैं सीता को ग्रहण कर लेता हूं । पर फिर मैंने सोचा कि यदि ऐसा तो राजा का धर्म पालन न कर सकूंगा । कर्त्तव्य-पथ से डिग जाऊंगा । इस लिये अब मेरा साहस नहीं पड़ता कि सीता को ग्रहण कर लूं । एक उपाय मैंने यह भी सोचा था कि राज-काज का भार भरत को सौंप कर स्वयं वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करूं । ऐसी दशा में मेरे सीता को ग्रहण करने में किसी को कुछ आपत्ति नहीं होगी, फिर कोई कुछ कहे सुनेगा नहीं । पर अन्त में मुझे यह उपाय भी ठीक मालूम नहीं हुआ, क्योंकि मैंने सीता के प्रति बड़ा अत्याचार किया है, मैं धर्म से पतित हुआ हूं । मैंने जन्म ही दुःख भोगने के लिये लिया है । इस समय मैं अत्यन्त दुःखी हूं । जो जो दुःख कष्ट मैंने इस जन्म में भोगे हैं मेरे अतिरिक्त कौन जानता है ? यदि इसी क्षण मेरे प्राण निकल जायें तो मुझे निरन्तर दुःखों से छुटकारा मिल जाये ।" यह कह कर राम चन्द्र जी शोक के वेग के कारण बड़े व्याकुल हो गये और रोने लगे । थोड़ी देर के बाद जब शोक कुछ कम हुआ तो दोनों हाथ जोड़ बड़ी नम्रता से वाल्मीकि जी को कहने लगे---"भगवन् ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि जब सीता यहां आ जायें तो आप उन्हें सामने ले जाकर प्रजावर्ग से मेरे उन्हें ग्रहण करने के विषय में सम्मति माँगें । यदि किसी को मेरे ऐसा करने में कुछ आपत्ति न हो, कोई कुछ न बोले, तो मैं तत्क्षण उन्हें ग्रहण कर लूँगा । यदि सब लोगों की सम्मति न हुई तो उनका सन्देह दूर करने के लिये कोई पक्का प्रमाण ढूँढा जायगा ।" निरुपाय होकर वाल्मीकि जी

रामचन्द्र जी से सहमत हो गये और उदास होकर अपनी कुटी को चले गये।

७.

इधर यह बातें हो रही थीं, उधर सीता को लाने के लिये कौशल्या की भेजी हुई पालकी आश्रम में पहुँची। जब सीताजी ने वाल्मीकि जी के शिष्य के मुख से सारी बातें सुनीं तो वह मन-ही-मन कहने लगीं—"मालूम होता है, अब मेरे दिन फिरे हैं। परमेश्वर ने दया करके इतनी देर बाद मेरे दुःखों,कष्टों का अन्त कर दिया है। जब पूजनीय माता कौशल्या ने मुझे लिवा लाने के लिये पालकी भेजी है तो आर्य्य पुत्र मुझे अवश्य ही ग्रहण करेंगे। इस में क्या सन्देह हो सकता है? आज मेरी बाँयीं आँख फड़क रही है। मैं आर्य पुत्र के स्नेह, दया और समता को भलीभाँति जानती हूँ। उन्होंने अपनी इच्छा से मेरा परित्याग नहीं किया था, किन्तु सर्वथा अवश होकर ही मुझे घर से निकाला था। जिस प्रकार विरह-वेदना मुझे सता रही है, उसी तरह वह भी दुखी और शोकातुर हो रहे होंगे। यदि मुझ में उनका प्रेम घट जाता तो वह दूसरा विवाह कर लेते। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। यज्ञ में भी सहधर्म्मिणी के स्थान में मेरी ही सुवर्ण-मूर्त्ति बनाकर रख दी है। इस से उन्होंने प्रेम की पराकाष्ठा दिखाई है। यह बात सुनकर मेरा सब शोक जाता रहा था, पर मुझे स्वप्न में भी कभी ध्यान न आया था कि फिर भी आर्य पुत्र के सहवास का आनन्द, सौभाग्य प्राप्त होगा।" यह सोचते-सोचते सीता जी की आँखों से आनन्द के आँसुओं की वर्षा होने लगी। उन के शरीर में एक अपूर्व बल का सञ्चार हो गया। चित्त असीम स्फूर्त्ति और अद्भुत उत्साह से भर गया। मेरे स्वामी मुझे फिर

ग्रहण करेंगे—इस बात का ध्यान आने से उन के हृदय में आनन्द की लहरें उठने लगीं।

बलवती आशा का आश्रय लेकर सीता अपने मनमें अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करने लगीं। स्वामी के साथ सम्मिलन होनेपर भी क्या-क्या घटनाएँ घटेंगी, यही बातें बार-बार उनकी आँखों के आगे नाचने लगीं। इनका साक्षात् अनुभव-सा करके सीता को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने मन के नेत्रों से देखा तो मानों रामचन्द्र जी लज्जा के भाव से अधोमुख किये खड़े हैं। फिर अनुभव हुआ कि मानों अब रामचन्द्र जी आँखों से आँसू भरकर प्रेमसे वार्त्तालाप कर रहे हैं,पर मैं नहीं बोलती। अभिमान से मुख बिगाड़े खड़ी हूँ। फिर सोचा कि प्रथम सम्मिलन के कारण पति-पत्नी दोनों प्रेम-भरी दृष्टिसे एक दूसरे को देख रहे हैं और चुपचाप खड़े हैं। दोनों के नेत्रों से आँसू बह रहे हैं। फिर ख्याल आया कि हम दोनों एक ही आसन पर बैठे एक दूसरे को अपनी-अपनी विरह की राम-कहानी सुना रहे हैं। फिर सोचने लगीं कि मैं सासुओं; घरकी बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों की चरण-बन्दना कर रही हूँ और वह सब आँखों से आँसू बहाती मेरा मुख चूम रही हैं। मैं इतनी दुर्बल और दुवली हो गयी हूँ, यह देख कर उन्हें बड़ा शोक हो रहा है। फिर कल्पना की कि मैं अलग स्थान में बैठी आसुओं से बातचीत कर रही हूँ। इतने में लक्ष्मण आकर मुझे प्रणाम करते हैं। फिर यह दृश्य सीता की आँखों के आगे आया कि सब मिलकर शोक-विलाप करते और रोते हैं। यह ख्याल आया कि सोने की सीता उठा दी गयी है और मैं स्वामी के बायीं ओर बैठकर यज्ञ में सहधर्मिणी का काम कर रही हूँ। इसी तरह अपने मनमें अनेक प्रकार की कल्पनाएँ और आशाएँ करती हुई सीता जी

पालकीमें सवार हो गयीं। जब दूसरे दिन पालकी, सन्ध्या-समय-नैमिषारण्य-क्षेत्र में पहुँची तो वाल्मीकिजी ने सीता जी से कहा—“बेटी! रामचन्द्रजी ने अब तुम्हें ग्रहण करना स्वीकार कर लिया है। कल राज-सभा लगेगी और सब लोग वहाँ उपस्थित होंगे, उस समय मैं तुम्हें राजा रामचन्द्रजी को सौंप दूँगा।” वाल्मीकिजी को पूर्ण विश्वास था कि जब मैं रामचन्द्रजी से पुत्रों-सहित सीताको ग्रहण करने के लिये कहूँगा तो कोई भी आपत्ति न करेंगे, किसी प्रकार की रुकावट न डालेंगे और सीता को शुद्धाचारिणी सिद्ध करने के लिये किसी प्रमाण की आवश्यकता न पड़ेगी। सीताने कुश और लव से बहुतसी बातें पूछीं। जिससे उनके दिलके सब सन्देह दूर हो गये और उन्हें निश्चय हो गया कि अब आर्य्यपुत्र मुझे अवश्य ही ग्रहण करेंगे। वह अपने बिछुड़े हुए स्वामी को मिलने के लिये इतनी उत्सुक, इतनी बेचैन हो रही थीं कि उन्हें रात काटना दूभर हो गया। सारी रात आँख न लगी, इसी आशा में सारी रात बीत गयी कि कब दिन चढ़े और कब स्वामी का दर्शन प्राप्त हो।

८

रात बीत गयी। भोर हुई। वाल्मीकिजी नित्य-क्रियाओंसे निवृत्त होकर सीता कुश, लव और अन्यान्य शिष्यों को साथ लेकर राज-सभा में पहुँचे। रामचन्द्रजी ने देखा कि सीता बहुत दुबली हो गयी है, इससे उनके दिल पर बड़ी चोट लगी। उन्हें सीताजी की शोचनीय दशा पर बड़ी दया आयी। शोक का वेग रामचन्द्रने बड़ी कठिनता से रोका। चुपचाप बैठे रहे। उनके मनमें यह बड़ी भारी चिन्ता हो रही थी कि देखिये आज प्रजा कैसा व्यवहार करती है। सीता की अवस्था देखकर सभी को दुःख हुआ और

सब के चित्त दया से द्रवीभूत हो गये। वाल्मीकि जी सभा में आकर आसन पर नहीं बैठे। थोड़ी देर तक चुपचाप खड़े रहे, फिर बड़े ऊँचे स्वरसे कहने लगे—"इस समय इस सभामें सभी देशों, दिशाओंके राजा और प्रजावर्ग उपस्थित हैं, कोशल देशके प्रधान-प्रधान मनुष्य और नगरवासी और देशवासी भी यहाँ हैं। आपमें से किसी से छिपा नहीं कि रामचन्द्र जी ने निर्मूल निन्दा-चर्चा सुनकर, लोकापवाद के भय से सर्वथा निरपराधिनी और शुद्धाचारिणी सीता का परित्याग करके बन को भेज दिया था। सीता जी के परम पवित्र आचरण पर किसी को भी सन्देह न होना चाहिये। मैं आप सब सज्जनों से अनुरोध करता हूं कि आप रामचन्द्र जी के सीता को ग्रहण करने के लिये प्रसन्नतापूर्वक अनुमति प्रकट करें।" वाल्मीकि जी के यह बात कहते ही सभा में चारों ओर कोलाहल मच गया। जब महर्षि चुप हो गये तो कितने ही राजा और प्रधान उठ खड़े हो गये और हाथ जोड़कर कहा—"यदि राजा रामचन्द्र इस समय सीता जी को ग्रहण करलें तो हमारे लिये इससे अधिक हर्ष का विषय और क्या हो सकता है?" पर वहीं कुछ लोग ऐसे भी दिखाई दिये जो अधोमुख लिये चुपचाप बैठे रहे और कुछ न बोले। रामचन्द्र जी के मन में जो सन्देह खटक रहा था वह ठीक निकला। उन्होंने देखा कि साधारण लोग यह उचित नहीं समझते कि मैं सीता को ग्रहण करूँ। वह इस बात में सहमत नहीं हैं। इससे रामचन्द्र जी को बड़ा दुःख हुआ और वह मलिन मुख किये वाल्मीकि जी की ओर देखने लगे। जब कोई उपाय न रहा तो लाचार होकर सीता को कहने लगे—"बेटी! लोगों के मन में तुम्हारे सम्बन्ध में जो सन्देह बैठ गया है वह अब तक दूर नहीं हुआ। अब यही

उचित है कि तुम स्वयं अपनी पवित्रता का कोई प्रत्यक्ष, कोई पक्का प्रमाण देकर इनका सन्देह दूर करो।" सीता पर जैसे वज्रपात हो गया। वह वाल्मीकिजी के दाहिनी ओर खड़ी इस बात की प्रतीक्षा कर रही थीं कि रामचन्द्र जी अब भी मुझे ग्रहण करते हैं। ज्योंही वाल्मीकि जी के मुख से यह शब्द सुने वह अचेत होकर इस प्रकार पृथ्वी पर गिरीं जैसे प्रचण्ड वायु के झोंके से कोई वृक्ष जड़ से उखड़ कर गिरता है।

६

जब कुश और लव ने अपनी माता की यह दशा देखी तो वह अधीर हो उठे और रोने लगे। रामचन्द्र जी अपनी प्रजा को प्रसन्न और सन्तुष्ट रखने की अभिलाषा से चुपचाप बैठे थे, पर जब उन्होंने सीता को मूर्छित होकर भूमि पर गिरते देखा तो वह भी सह नहीं सके, उनके हृदय में शोकसागर उमड़ आया, उनके धीरज का बांध टूट गया। शोकातुर होकर और 'हाय प्यारी सीता!' कहकर सिंहासन से नीचे गिर पड़े। कौशल्या भी यह दशा देख अचेत हो गयीं। उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्त्ति भी रोने विलाप करने लगीं। चारों ओर हाहाकार मच गया। जितने आदमी सभा में उपस्थित थे सब चित्रलिखितसे बैठे रह गये। यद्यपि भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण स्वयं शोक के मारे कुछ कम व्याकुल नहीं थे, फिर भी धीरज धर अपने दिल को संभाल कर वह अपने बड़े भाई की मूर्च्छा दूर करने का उपाय करने लगे। रामचन्द्र जी को थोड़ी देर के बाद होश आ गया। वाल्मीकि जी ने सीता जी की मूर्च्छा दूर करने, उन्हें होश में लाने के लिये यत्नपूर्वक बहुत से उपाय किये, पर कुछ फल न हुआ। सब निष्फल व्यर्थ गये। थोड़ी देर के बाद उनकी समझ में आया कि

सीताजी परलोक सिधार गईं । सीताजी बड़ी सुशीला थीं। उन का स्वभाव बड़ा ही सरल और सीधा था। उन जैसी पतिव्रता, पति-परायणा स्त्री इस संसार में न कभी देखी गयी और न सुनी ही गयी। उन्होंने अपने शुद्ध, पवित्र आचरण से पति-भक्ति और पति-परायणता की पराकाष्ठा दिखा दी। मालूम होता है कि विधाता ने उन्हें जन्म ही इसलिये दिया था कि इस संसार को पातिव्रत-धर्म का उपदेश दें। यह कभी सुनने में नहीं आया कि इस संसार में किसी ऐसी सर्व-गुण-सम्पन्ना स्त्री ने जन्म लिया हो या जन्म लेकर सर्व-गुण-सम्पन्न होकर और सर्वथा योग्य, सर्वगुण-सम्पन्न पति को पाकर भी सीता की तरह चिर-दुःखिनी रही हो!

॥ इति ॥

देवियों के पढ़ने योग्य शिक्षाप्रद पुस्तकें

—स्त्री शिक्षा—

स्त्री के लिये अपने पति तथा सास, ससुर व अन्य सम्बन्धियों के लिये क्या कर्तव्य हैं, स्त्री घर को स्वर्ग समान कैसे बना सकती है, यह जानने के लिये यह पुस्तक हरएक स्त्री को पढ़नी चाहिये। मूल्य दस आना।

—आदर्श पति—

पति का अपनी स्त्री के लिये क्या कर्तव्य है, स्त्री को कैसे प्रसन्न रखा जाए, इसके लिये प्रत्येक पत्नि को चाहिए कि वह अपने पति को यह पुस्तक अवश्य पढ़ाए। मूल्य दस आना।

—विवाहित प्रेम—

नवविवाहित स्त्री पुरुषों के लिये जितनी उपयोगी पुस्तक यह सिद्ध हुई है शायद ही कोई हुई हो। यह पुस्तक प्रत्येक भाषा में छप कर लाखों बिक चुकी हैं। मूल्य २)

—शिशु पालन—

बच्चों के पालन पोषण के लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है, गर्भ से लेकर बच्चा जब तक बालक अवस्था को प्राप्त हो जाता है तब तक का उसके सब रोगों और उसकी औषधि के सम्बन्ध में पूरा विवरण दिया गया है। मूल्य १)

—गृहस्थ जीवन रहस्य—

आदर्श गृहस्थ कैसे बन सकता है, वेदों-शास्त्रों के वाक्य देकर पुस्तक को बहुत उपयोगी बनाया गया है। आर्य परिवारों में कौन २ से पर्व और कैसे मनाए जाने चाहियें इस पुस्तक में दिये गये हैं। मूल्य १॥)

—संसार की स्त्रियां—

इस पुस्तक में विदेश के सब देशों की स्त्रियों के सम्बन्ध में लिखा है कि उन्होंने किस प्रकार कार्यक्षेत्र में आकर अपनी जाति का उत्थान और उन्नति की है, भारतवर्ष की नारियों को भी मैदान में आकर देश का कल्याण करना चाहिये। मूल्य १)

—अबला की आह—

इस पुस्तक में स्त्री जाति पर प्रति दिन होने वाले अत्याचारों का बड़ा मार्मिक वर्णन किया गया है जिसे पढ़कर दिल दहल जाता है। पढ़ने योग्य पुस्तक है। मूल्य १)

पुस्तकें मिलने का पता—

महाशय राजपाल एन्ड सन्स

आर्य पुस्तकालय, अनारकली, लाहौर

मुद्रक—

ला० खुशहालचन्द आनन्द, वीर मिलाप प्रैस, मोरी गेट लाहौर।